धर्मायण

मूल्य : 20 रुपये
अंक 109
श्रावण, 2078 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

शिवमन्दिर, ग्राम-बेलाही, मधुबनी में ब्रह्मा की पूजित प्रतिमा।
चित्र- साभार : श्री अजीत मिश्र

ब्रह्मा-विशेषांक

महावीर मन्दिर समाचार, पृ. सं. 78 से जारी

महावीर हार्ट हॉस्पीटल में चार बच्चों के हृदय में जन्मजात छेद का नि:शुल्क ऑपरेशन

तीन साल की पुत्री के हृदय में तीन छेद थे, बंद किए गए

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित महावीर हार्ट हास्पीटल में चार बच्चों के हृदय में जन्मजात छेद का नि:शुल्क ऑपरेशन किया गया। इनमें चार महीने का शमीम सबसे छोटा बच्चा था। महावीर हार्ट हास्पीटल के निदेशक और दिल्ली एम्स के पूर्व सर्जन डॉ किशोर जोशी ने बताया कि नरकटियागंज के रहने वाले शमीम के हृदय में दो छेद थे। इस वजह से उसका शारीरिक विकास नहीं हो पा रहा था। काफी कठिन ऑपरेशन के जरिए इसके हृदय के दोनों छेद बंद किए गए। दो साल की नैंसी के हृदय में भी दो छेद थे। फेफड़े में ब्लॉकेज के कारण उसका शरीर नीला पड़ गया था। उसके हृदय का छेद बंद करने के साथ फेफड़े में ब्लॉकेज को ऑपरेशन के जरिए ठीक किया गया। वहीं महावीर हार्ट हास्पीटल में भर्ती तीन साल की पुची के हृदय में तीन छेद बन्द किए गए। उसके फेफड़े की रुकावट को भी ऑपरेशन के जरिए दूर किया गया। जबकि चार साल की अंबी के हृदय में जन्मजात छेद के अलावा उसके फेफड़े की नसें उल्टी थीं। ओपन हार्ट सर्जरी के जरिए छेद बन्द करने के साथ फेफड़े की नसों को सीधा किया गया। डॉ किशोर जोशी ने बताया कि सभी बच्चे ऑपरेशन के बाद अब ठीक हैं।

Title Code- BIHHIN00719

आलेख -सूची

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 109

श्रावण, 2078 वि० सं०

25 जुलाई-22 अगस्त, 2021ई०

प्रधान सम्पादक

आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार:

महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E-mail:
dharmayanhindi@gmail.com

Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/
www.dharmayan.com

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 20 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 108, ज्येष्ठ, 2078 वि०सं०
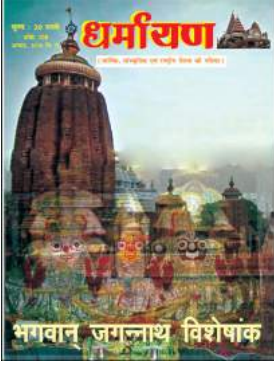
भगवान् जगन्नाथ-अंक के कलावरेण्य आवरण और शोधपरक आलेखों के लिए लेखकवृन्द की निर्विकार सारस्वत साधना के साथ ही सम्पादक महोदय की निष्ठा के प्रति नमित हूँ। यथाप्रस्तुत अंक में मैंने सर्वप्रथम पालगंज के जगन्नाथ मन्दिर पर समर्पित पं० रामकिंकर उपाध्याय का आलेख पढ़ा। हरिगीतिका छन्द में रचित उनकी "रथयात्रा" शीर्षक रचना प्रीतिकर लगी।

पालगंज मेरा ननिहाल है और लगभग एक सौ पचास वर्षों से मेरे ननिहाल-परिवार की ओर से श्रद्धा -भक्तिपूर्वक भगवान् जगन्नाथ की दैनिक पूजा-सन्ध्या और रथयात्रा-जैसे वार्षिकोत्सव का आयोजन धूमधाम से किया जाता रहा है। जब-जब पालगंज की रथयात्रा की चर्चा सुनता-पढ़ता हूँ; मेरा बचपन साकार हो उठता है। मैंने अपनी माँ के मुखारविन्द से कई बार सुना है, एक थे भगीरथ बाबाजी, उन्होंने ही ईश्वर की प्रेरणा से तीनों दारु-विग्रहों को एक साथ पुरी से पैदल चलकर पालगंज लाने का घोर तप किया था। भगीरथ बाबाजी के माता-पिता को बहुत दिनों तक जब कोई सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने जगन्नाथपुरी में यह कहते हुए मनौती माँगी थी कि पहली सन्तान हम आपकी सेवा में ही लगा देंगे। इस बारे में पालगंज के पुराने विद्वज्जन आधिकारिक बातें जोड़ सकते हैं। आज मेरी माँ जीवित होती तो उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं होता। कई सन्दर्भ और जुड़ जाते। आखिरकार, वह ठाकुर को समर्पित

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं– +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक **सप्तर्षि-विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। ब्रह्मा के सात मानसपुत्रों- मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं वसिष्ठ—ये सात सप्तर्षि माने गये हैं, जिनमें से अनेक धर्मसूत्रकार तथा स्मृतिकार भी हैं। इनके नाम पर आकाशमे नक्षत्र समूह भी हैं। इनकी परम्परा पर यह अंक प्रस्तावित है।

पुण्यश्लोक जटाधारी उपाध्याय की जी-जान से सेवा करनेवाली बड़ी पौत्री जो थी! धर्मायण का हर अंक संग्रहणीय सन्दर्भ-ग्रन्थ के समतुल्य समादृत बनाने हेतु विद्वान् लेखकों एवं सम्पादक व प्रधान सम्पादक महोदय को शतशः साधुवाद

आचार्य संदीप कुमार, झारखंड

आदरणीय,

धर्मायण का 108 वाँ अंक देखा। उपयोगी, पठनीय और संग्रहणीय है।आपकी सम्पादन कला काबिले तारीफ है। बधाइयाँ और शुभकामनाएँ।

डा जे बी पाण्डेय, राँची।

बहुत ही उपयुक्त समय पर यह अङ्क upload किया जा रहा है। भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा 12 जुलाई से प्रारम्भ हो रही है। मिथिला के एक प्रख्यात ग्राम सरिसब-पाही में 150 वर्षों से रथयात्रा धूमधाम से मनाई जाती रही है। इसका वैशिष्ट्य यह है कि यह महोत्सव एक ही परिवार के द्वारा इतने लम्बे समय से मनाया जाता रहा है। इसके नैरन्तर्य में आज तक किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं हो सका है। 'धर्मायण' के इस अङ्क के लिए मेरी व्याकुलता स्वाभाविक है। स्वनामधन्य पण्डित भवनाथ झाजी की अप्रतिम प्रतिभा व ईर्ष्य सम्पादकीय सूक्ष्मेक्षिका की अनुभूति एक बार पुनः हो पाएगी। असीम सम्मान व अनन्त शुभकामनाओं के साथ— मित्र नाथ झा, दरभंगा।

ॐ प्रजापतये स्वाहा

-भवनाथ झा

मिथिला में एक कहावत है— "डाली झाड़ि ब्रह्माक पूजा" — यानी सभी देवताओं की पूजा के अन्त में बचे-खुचे फूल की डाली में ही अक्षत-चन्दन डालकर उसी डाली को उलीज कर ब्रह्मा की पूजा होती है। यह कहावत ऐसे प्रसंग में भी व्यङ्ग्य में कहा जाता है, जहाँ वितरण के क्रम में सबसे निरीह व्यक्ति को अन्त में बची-खुची वस्तु दे दी जाए। उपासना में ब्रह्मा के साथ ऐसा ही व्यवहार वर्तमान में हो रहा है। ब्रह्मा त्रिदेव में से प्रथम सृष्टिकर्ता हैं, प्रजापति हैं, इन्ही के नाम से ब्राह्मी लिपि है, सबसे अमोघ अस्त्र ब्रह्मास्त्र है, ब्रह्मा देवताओं में प्रथम हैं।[1] फिर ऐसे ब्रह्मा की उपासना सबसे अन्त में क्यों? ब्रह्मा की स्तुति भी पौराणिक साहित्य में क्यों नहीं मिलते? सर्वत्र ब्रह्मा ही विष्णु, दुर्गा एवं शिव की स्तुति करते दिखाये गये हैं। ब्रह्मा पर मिथ्याभाषण के भी आरोप लगाये जाते हैं। 'पद्मपुराण' में लिङ्गोद्भव प्रसंग में ब्रह्मा के विषय में कहा गया कि उन्होंने मिथ्या कहा कि मैंने इस ज्योतिस्तम्भ का अन्त देख लिया है। पुष्कर क्षेत्र की कथा में सावित्री के शाप की चर्चा है, तो उसी 'पद्म-पुराण' के सृष्टि खण्ड में पुत्री सरस्वती पर उनके द्वारा सम्मोहित होने की कथाएँ गढ़ी गयी। ब्रह्मा की इन पौराणिक कथाओं में जो कुछ कसर बाँकी रही, पौराणिक आख्यानों की गलत व्याख्या कर 19वीं के यूरोपीयनों एवं 20 शती के आधुनिक वामपन्थियों ने उसकी पूर्ति कर डाली।

इसके विपरीत हम वैदिक साहित्य में ब्रह्मा को सर्वप्रमुख देवता के रूप में पूजित देखते हैं। उन्हें प्रजापति कहा गया है। पर बाद में किन-किन चरणों में, कैसे ब्रह्मा का यह अपकर्ष हुआ और इसके पीछे क्या सच्चाई है, यह गवेषणा का विषय है। इसी विषय पर केन्द्रित कर हमने इस विशेषांक की संकल्पना की है। इसमें अनेक भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयास किया गया है।

ब्रह्मा की स्तुति क्यों नहीं की जाती है?

यह स्वाभाविक प्रश्न है। जिस प्रकार अन्य देवी-देवताओं की स्तुति में अनेक प्रसंग लिखे गये, उस प्रकार ब्रह्मा की किसी ने स्तुति क्यों नहीं की। इसके उत्तर में भलें हम ब्रह्मा के अपकर्ष सम्बन्धी कथाओं को दुहरायें, पर सच्चाई कुछ और है। इसका उत्तर जानने के लिए हमें शतपथ ब्राह्मण की एक कथा का विवेचन करना होगा— वाक् एवं मन के बीच का संवाद। वाक् को इन्द्र ने श्रेष्ठ घोषित कर दिया था, जिसके गौरव से वह फूले नहीं समा रही थीं। वाक् एवं मन के बीच श्रेष्ठता को लेकर विवाद हुआ। दोनों निर्णय हेतु प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने कहा— मन वाक् से श्रेष्ठ है। मन की श्रेष्ठता स्वीकार करने के कारण वाक् ने प्रजापति को कहा कि मैं आपके लिए दी गयी आहुति नहीं ले जा जाऊँगी।

"वाङ्मनसयोः संवादस्तत्र प्रजापतिकृतो निर्णयश्च, एतन्निर्णयेन विषादाद्वाचो गर्भः पतितस्ततः प्रभृति प्रजापतिं प्रति वाचोऽहव्यवाट्त्वधारणं,..."[2]

1 ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः। न जानन्ति गुणं रूपम् इत्यादि।

2 शतपथब्राह्मण, 1.4.5

इसकी कथा विस्तार से आगे दी गयी है—

"अथातो मनसश्चैव वाचश्च। अहम्भद्र उदितं मनश्च ह वै वाक्चाहम्भद्र ऊदाते— तद्ध मन उवाच। अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि न वै मया त्वं किं चनानभिगतं वदसि सा यन्मम त्वं कृतानुकरानुवर्त्मास्यहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मीति। अथ ह वागुवाच। अहमेव त्वच्छ्रेयस्यस्मि यद्वै त्वं वेत्थाहं तद्विज्ञपयाम्यहं संज्ञपयामीति। ते प्रजापतिं प्रतिप्रश्नमेयतुः। स प्रजापतिर्मनस एवानूवाच मन एव त्वच्छ्रेयो मनसो वै त्वं कृतानुकरानुवर्त्मासि श्रेयसो वै पापीयाङ्कृतानुकरोऽनुवर्त्मा भवतीति। सा ह वाक्परोक्ता विसिष्मिये। तस्यै गर्भः पपात सा ह वाक्प्रजापतिमुवाचाहव्यवाडेवाहं तुभ्यं भूयासं यां मा परावोच इति तस्माद्यत्किं च प्राजापत्यं यज्ञे क्रियत उपांश्वेव तत्क्रियते अहव्यवाड्विवाक्प्रजापतय आसीत्। तद्धैतद्देवाः। रेतश्चर्मन्वा यस्मिन्वा बभ्रुस्तद्ध स्म पृच्छन्त्यत्रेव त्यादिति ततोऽत्रिः सम्बभूव तस्मादप्यात्रेय्या योषितैनस्व्येतस्यै हि योषायै वाचो देवताया एते सम्भूताः।।"[3]

अर्थात् इसके बाद मन एवं वाक् दोनों आपस में विवाद करने लगे लगे कि मैं श्रेष्ठ हूँ तो मैं श्रेष्ठ हूँ। मन ने कहा कि मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ, क्योंकि मेरे विना तुम कुछ बोल नहीं सकते। चिन्तन श्रेष्ठ होता है अतः मैं श्रेष्ठ हूँ। वाणी ने कहा कि यदि मैं न रहूँ, तो चिन्तन धरा का धरा रह जायेगा, वह व्यवहार में नहीं आ सकेगा। विवाद बढ़ा तो दोनों ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्मा ने चिन्तन की श्रेष्ठता को स्वीकार किया और मन को श्रेष्ठ कह दिया। इस पर वाणी का गर्व ध्वस्त हो गया —वैदिक भाषा में गर्भ गिर गया। उसने ब्रह्मा को शाप दिया कि मैं आपके लिए हविष् नहीं ले जाऊँगी। तब से प्रजापति ब्रह्मा को मन ही मन आहुति दी जाने लगी।

ब्रह्मा का निर्णय बिल्कुल स्पष्ट है। ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती को प्रकट करने का एक साधन मात्र वाणी है, दूसरा साधन लिपि के रूप में ब्रह्मा की सृष्टि है। वाक् = वाणी, सरस्वती के सम्पूर्ण को रूप का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। वाक् सरस्वती की बेटी हो सकती है, पर उसे हम पर्याय नहीं मान सकते। परवर्ती काल में भ्रमवशात् वाक् और सरस्वती को पर्याय मान लेने के कारण ब्रह्मा पर अगम्यागमन का आरोप भी लगा, जो सत्यता से परे है।

प्रजापति ब्रह्मा को मन ही मन आहुति जिये जाने के कारण वाणी द्वारा मन्त्र की आवश्यकता भी नहीं रही और परवर्ती साहित्य में उनकी स्तुतियाँ भी नहीं लिखी गयी। यही कारण रहा कि उपासना की परम्परा से ब्रह्माजी अलग-थलग पड़ते गये। यद्यपि ब्रह्मा के सम्बन्ध में इस मौन की अनेक व्याख्याएँ की गयी और मूल वैदिक-यज्ञ की परम्परा से अनभिज्ञता के कारण पौराणिक कथाओं का विस्तार हुआ; लेकिन ब्रह्मा के द्वारा वाणी की श्रेष्ठता अस्वीकार किये जाने के कारण यह परम्परा चली। ब्रह्मा बाद में अनेक देवी-देवताओं की स्तुति करनेवाले एक वृद्ध के रूप में चित्रित हुए।

फिर भी, संस्कृत वाङ्मय में ब्रह्मा के लिए पर्याप्त शब्द प्रचलन में हैं, जिनका समेकित संकलन 'अमरकोष' में किया गया है। इसकी मूल पाठ में ब्रह्मा के 20 नाम हैं। अमरकोष पर वर्तमान में 80 टीकाओं की सूचना मिली है।[4] इनमें से अनेक टीकाकारों ने प्रक्षेपों का भी उल्लेख किया है। इन प्रक्षिप्त अंशों में भी ब्रह्मा के नाम हैं। यदि हम इन नामों की व्युत्पत्ति पर ध्यान दें तो भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मा के मौलिक स्वरूप की व्याख्या हो जाती है। ब्रह्मा के निम्नलिखित पर्याय है—

3 शतपथब्राह्मण, 1.4.5.8-13

4 New Catalogues Catalogorum के सम्पादक डा. ममता मिश्र 'दाश' द्वारा दी गयी व्यक्तिगत सूचना

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः। हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः॥

धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः। स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड् विधिः।।[5]

1. **ब्रह्मन्** (पुं०)– बृंहति वर्द्धयति प्रजाः इति ब्रह्मा– जो सन्तति की वृद्धि करते हैं।
2. **आत्मभू** (पुं०)– आत्मनो विष्णोः सकाशात् आत्मना स्वयमेव वा भवति इति– जो आत्मास्वरूप विष्णु के पास उत्पन्न होते हैं अथवा स्वयं अपने से उत्पन्न होते हैं वे **आत्मभूः** ब्रह्मा हैं।
3. **सुरज्येष्ठ** (पुं०)– सुरेषु ज्येष्ठः– देवताओं में श्रेष्ठ
4. **परमेष्ठिन्** (पुं०)– परमे व्योमनि, चिदाकाशे ब्रह्मपदे वा तिष्ठति इति **परमेष्ठी–** परमाकाश में चिदाकाश में अथवा ब्रह्मपद में जो रहते हैं।
5. **पितामह** (पुं०)– लोकपितृणां मरीच्यादीनाम् अर्यमादीनां वा पिता इति **पितामहः**– जनों के पितर, मरीचि आदि तथा अर्यमा आदि पिता होने के कारण लोक के पितामह कहलाये।
6. **हिरण्यगर्भ** (पुं०)– हिरण्यं हिरण्मयमण्डं तस्य गर्भ इव हिरण्यगर्भः– सृष्टि रूपी स्वर्णमय अण्ड के मध्यमे अवस्थित
7. **लोकेश** (पुं०)– लोकानाम् ईशः लोकेशः– लोकों के स्वामी
8. **स्वयम्भू** (पुं०)– स्वयमेव भवति इति स्वयम्भूः– जो स्वयं उत्पन्न होते हों
9. **चतुरानन** (पुं०)– चत्वारि आननानि अस्य इति चतुराननः, जिनके चार मुख हों
10. **धातृ** (पुं०)– दधाति इति धाता– जो सब कुछ धारण करते हों।
11. **अब्जयोनि** (पुं)– अब्जं योनिः अस्य इति अब्जयोनिः–
12. **द्रुहिण** (पुं०)– द्रुह्यति दुष्टेभ्यः इति द्रुहिणः– जो दुष्टों से द्वेष करते हों।
13. **+द्रुघण** (पुं०)– द्रुः संसारवृक्षो हन्यते अनेन इति द्रुघणः– जो संसार रूपी वृक्ष को काट देते हों।
14. **विरिञ्चि** (पुं०)– विरचयतीति विरिञ्चिः– जो सृष्टि की रचना करते हों
15. **+विरञ्चि** (पुं०)– विरचयतीति विरञ्चिः– जो सृष्टि की रचना करते हों
16. **कमलासन** (पुं०)– कमलम् आसनं यस्य सः कमलासनः– कमल जिनका आसन हो।
17. **स्रष्टृ** (पुं०)– सृजति इति स्रष्टा– जो सर्जन करते हों
18. **प्रजापति** (पुं०)– प्रजानां पतिः इति प्रजापतिः– जो प्रजा के स्वामी हों।
19. **वेधस्** (पुं०)– विदधाति इति वेधा– जो सबको धारण करते हों।
20. **विधातृ** (पुं०)– विशेषेण दधाति इति विधाता– जो विशेष रूप से सबको धारण करते हों।
21. **विश्वसृज्** (पुं०)– विश्वं सृजति इति विश्वसृज्– जो सबकुछ की सृष्टि करते हों।
22. **विधि** (पुं०)– विधत्ते इति विधिः– जो सबका धारण एवं पोषण करते हों।

अमरकोष के प्रक्षिप्त श्लोकों में ब्रह्मा के नाम

नाभिजन्माण्डजः पूर्वो निधनः कमलोद्भवः। सदानन्दो रजोमूर्तिः सत्यको हंसवाहनः॥[6]

5 अमरकोष, प्रथम काण्ड, स्वर्गवर्ग

6 अमरकोष, पं० हरगोविन्द शास्त्री (सम्पादक), भानुजिदीक्षित कृत रामाश्रमी व्याख्या (सुधा) युक्त, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं. 2072, पृ. 9-10

अमरकोष की दाक्षिणात्य प्रति में कुछ अन्य पाठान्तर इस प्रकार भी मिलते हैं—

शतानन्दः शतधृतिः प्रजासृट् सर्वतोमुखः। विश्वात्मा विश्वरेताश्च विखना नाभिजोऽण्डज।।
अब्जगर्भश्च वागीशः प्राणदो हंसवाहनः।[7]

यहाँ 'विखना' नाम बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। इससे दक्षिण भारत में प्रसिद्ध वैखानस आगम ब्रह्मा से सम्बद्ध माना जायेगा और वैखानसागम की व्युत्पत्ति पर चल रहे मतवादों का अन्त माना जायेगा। इस 'विखना' शब्द के स्थान में कुछ पाण्डुलिपियों में 'द्रुघण' पाठ भी उपलब्ध होता है। अन्य नाम तो यौगिक हैं, जो किसी न किसी प्रकार से मूल नामों के पर्याय हो जाते हैं।

1. **नाभिजन्मन्** (पुं)— जिनका जन्म विष्णु की नाभि से हुआ हो
2. **अण्डज** (पुं०)— जिनका जन्म ब्रह्माण्ड से हुआ हो
3. **पूर्व** (पुं०)— पहले देवता, प्रमुख देवता
4. **निधन** (पुं०—नपुं०)— अर्थात् जिनके पास धन न हो।
5. **कमलोद्भव** (पुं०)— अर्थात् कमल से जिनकी उत्पत्ति हो।
6. **सदानन्द** (पुं०)— जो हमेशा आनन्दमय रहें।
7. **रजोमूर्ति** (पुं०)— जो रजोगुण से भरे हों
8. **सत्यक** (पुं०)— जो सत्ययुग के स्वरूप हों अथवा सत्यस्वरूप हों
9. **हंसवाहन** (पुं०)— जिनका वाहन हंस हो।
10. **शतानन्द** (पुं०)— जो असंख्य आनन्दवाले हों।
11. **शतधृति** (पुं०)— जो अत्यधीर धैर्य धारण करनेवाले हों।
12. **प्रजासृट्** (पुं०)— प्रजा का सर्जन करनेवाले
13. **सर्वतोमुख** (पुं०)— जिनके मुख चारों ओर हों
14. **विश्वात्मा** (पुं०)— विश्व के आत्मा स्वरूप
15. **विश्वरेता** (पुं०)— जिनके पास सारी शक्तियाँ हों।
16. **विखना** (पुं०)— जो पृथ्वी को खोदते न हों अर्थात् उपजाया गया अन्न जो न खाते हों— अकृष्टपच्य
17. **नाभिज** (पुं०)— विष्णु की नाभि से उत्पन्न
18. **अण्डज** (पुं०)— अण्ड— ब्रह्माण्ड से उत्पन्न
19. **अब्जगर्भ** (पुं०)— कमल का मध्यभाग, कमल पर विराजमान होने के कारण इन्हें अब्ज का गर्भ कहा गया है।
20. **वागीश** (पुं०)— वाक् अर्थात् वाणी के स्वामी
21. **प्राणद** (पुं०)— प्राण देने वाले
22. **हंसवाहन** (पुं०)— हंस जिनका वाहन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मा के प्राचीन नामों में उन्हें सृष्टिकर्ता, पालन कर्ता तथा संहारकर्ता तीनों कहा गया है।

***

7 अमरकोष, ए०ए० रामनाथन (सम्पादक), दक्षिण भारतीय आलोचनात्मक संस्करण, आड्यार लाइब्रेरी एंड रिसर्च सेंटर, 1972, पृ. 14

श्री महेश प्रसाद पाठक*

ब्रह्मा सृष्टिकर्ता माने गये हैं। उनका वर्णन ब्राह्मण-ग्रन्थों से लेकर पौराणिक साहित्य में प्रचुर हुआ है। महाभारत भी ब्रह्मा की सभा का विशद वर्णन प्रस्तुत करता है, जिसमें सभी देव, पितर, ऋषि आदि उपस्थित रहते हैं। इसी ब्रह्मसभा का उल्लेख बाणभट्ट ने हर्षचरित के आरम्भ में भी किया है। बाणभट्ट ने स्पष्ट रूप से देवी सरस्वती को ब्रह्मा की शक्ति मानकर दुर्वासा के शाप का प्रसंग उपस्थापित किया है, जिसके कारण सारस्वत का जन्म हुआ जो बाणभट्ट के पूर्वज थे। यहाँ लेखक ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा पुराणों के आधार पर ब्रह्मा का विवेचन करते हुए महाभारत की ब्रह्म-सभा का विवरण दिया है।

ब्रह्म-सभा

पौराणिक त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश) में प्रथम नाम ब्रह्मदेव का ही आता है। इन्हें जगत् का आद्य स्रष्टा, प्रजापति, पितामह, स्वयम्भू, हिरण्यगर्भ कहकर सम्बोधित किया गया है। प्रजनन तथा जीवित प्राणियों के रक्षक के रूप में प्रजापति का अथर्ववेद में आवाहन किया जाता है। उत्पन्न होने वाले समस्त जीवों के पति ही प्रजापति कहे जाते हैं। इनके बनाये विधानों का पालन देवगणों के साथ समस्त प्राणी भी किया करते हैं। अथर्ववेद और वाजसनेयी संहिता में ये प्रमुख देव के रूप में स्वीकृत हैं। ये देवों के पिता हैं[1], सृष्टि के आरम्भ में अकेले इन्हीं का अस्तित्व था।[2] प्रजापति का यही वेदप्रतिपाद्य स्वरुप है। क्षीरसागर में शेषशायी भगवान् विष्णु के नाभिकमल से निःसृत तथा इसके ऊपर बैठे ब्रह्मदेव का जन्म स्वतः होता है। नाभिकमल से इनका प्राकट्य होने के कारण इन्हें 'पद्मयोनि' तथा 'स्वयम्भू' कहा गया है। जगत् (ब्रह्माण्ड) की सृष्टि करना इनका अभिहित एवं विशिष्ट कार्य है। इन्होंने ही आकाश और पृथ्वी को स्थापित किया। मानव सृष्टि के मूलांकुर कहे जाने वाले स्वायम्भुव मनु इन्हीं के पुत्र थे, जो इनके दक्षिण भाग से उत्पन्न हुए थे तथा इनके वाम भाग से महारानी शतरूपा की उत्पत्ति हुई थी। इन्हीं दोनों के द्वारा मैथुनी सृष्टि का आरम्भ हुआ था। इसप्रकार सभी देवता इन्हें 'पितामह' कहते हैं। ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 121वें सूक्त को 'हिरण्यगर्भ सूक्त' के नाम से जाना जाता है। इस सूक्त में दस सूक्त हैं, जिनमें प्रथम नौ सूक्तों में

हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।1।

1 शतपथ– 11/1/6/1– तत्राप्यखिलजगत्कारणमयस्य प्रजापतेरुपादानस्याण्डस्यो-त्पत्तेरभिधानं, तस्मादण्डात्संवत्सरेऽतीते प्रजापतेरुत्पत्तेरभिधानं, एतदृष्टान्ते-नाधुनातनलोकिक्याः सर्वसृष्टेः साधारण्येन संवत्सरसाध्यत्वप्रतिपादनं, स प्रजापतिरुत्पत्त्यनन्तरं...

2 शतपथ–11/1/6/1– इत्थं परमेष्ठी स्वयं सार्वात्म्यं प्राप्य पितुरपि तत्प्राप्तये एतेनायाजयदित्यभिधानं,

*"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो– जिला–गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathak-mahesh098@gmail.com मो. नं. 9934348196

—'उन ईश्वर के लिये हम हवि अर्पित करते हैं'— का प्रयोग किया गया है। किन्तु इसके अन्तिम सूक्त में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रजापति ही सभी प्राणियों में व्याप्त है, अन्य किसी से अपनी कामनाओं के लिये प्रार्थना करना उपयुक्त नहीं।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।10।

'हे प्रजा के पालनकर्ता! आप सभी प्राणियों में व्याप्त हैं, दूसरा कोई इनमें नहीं। अन्य किसी से अपनी कामनाओं के लिये प्रार्थना करना उपयुक्त नहीं। जिन कामनाओं के लिये हम आहुति दे रहे हैं, वह पूरी हों और हम प्राप्त धनों के स्वामी बनें।' अतः प्रजापति की उपाधि 'क' हो गयी और 'क' सर्वोच्च देवता का वाचक कहलाने लगा। 'हिरण्यगर्भ' या 'सुवर्णगर्भ' और कोई नहीं, अपितु सृष्टि के आदि में स्वयं प्रकट होने वाला बृहद् अण्डाकार तत्त्व है, यही सृष्टि का मूल है। वैदिक प्रजापति को ही पुराणों में ब्रह्मा के रूप में स्वीकार किया गया है। जिन अधिकारी वैदिक विद्वानों को यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त होता है, उनको ऋत्विक् कहा जाता है। इन ऋत्विकों को चार वर्गों में बाँटा जाता है। इनमें अथर्ववेद के गणों का नाम 'ब्रह्मा' है। ब्रह्मा अथर्ववेद के द्वारा यज्ञीय कर्मों के न्यूनादि दोषों का परिहार कर शान्ति, पौष्टिक, अभिचारिकादि अभिलाष-सम्पूरक कर्म को सम्पादित करते हैं।

ब्रह्म और ब्रह्मा

ब्रह्म को कुछ लोग भगवान् (ईश्वर) से अलग करके देखते हैं। कुछ लोग राम-कृष्ण-शिव आदि के स्वरूप को भगवान् मानते तो है, किन्तु ब्रह्मरूप में नहीं स्वीकारते। हमारी इस अज्ञानता का निवारण करने के लिये सत्साहित्यों का अपूर्व योगदान है। बृहत् होने से अथवा बृंहण करने के कारण श्रुति सत्-तत्त्व को 'ब्रह्म' कहती है।[3] ईश्वर को तत्त्वदर्शियों ने द्विविध रूप में अनुभव किया है, वे उनका 'ब्रह्म' और 'आत्मा' इन नामों से भी वर्णन करते हैं। वह बृहत् है और विश्व का उपवृंहण (वृद्धि) करने वाला है— इसलिये 'ब्रह्म' कहलाता है। ज्ञानाधिकारी उसे 'ब्रह्म' के रूप में जानते हैं, योगधिकारी उन्हें 'परमात्मा' के रूप में जानते है तथा भक्ति के अधिकारी उन्हें 'भगवान्' के रूप में दर्शन पाते हैं।

भगवान् परमात्मेति प्रोच्यतेऽष्टाङ्गयोगिभिः।
ब्रह्मेत्युपनिषन्निष्ठैर्ज्ञानं च ज्ञानयोगिभिः।।[4]

ब्रह्म एक दुःखरहित, निःसीम, सुखानुभव-लक्षण, अनाद्यन्त, अनामय, परब्रह्म, नारायण, सर्वभूतों में आवास किया हुआ, सबमें व्याप्त होकर भी स्थित, निरवद्य, अन्तरङ्ग, समुद्र के समान अविक्षित, प्राकृत गुण-स्पर्श-रहित, किन्तु अप्राकृत गुणों का आस्पद, भवसागर से सर्वथा पार, निष्कलङ्क, निरञ्जन, आकार-देश-काल के आयोग से सर्वथा अविच्छिन्न तथा इदम् इदृक्-इयत्ता से सम्यक्-तया अपरिच्छेद्य है।[5] 'महानिर्वाणतन्त्र' में ब्रह्म अद्वितीय, सत्य, नित्य, परात्पर, ब्रह्मादि देवताओं से भी परे, स्वयंप्रकाश, पूर्ण, सच्चिदानन्द, निर्विकार, निराधार, निर्विशेष, निराकुल, गुणातीत, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा, सर्वद्रष्टा, व्यापक, गूढ सर्वव्यापक, सनातन, सर्वेन्द्रिय-गुणाभास, सर्वेन्द्रिय-विवर्जित, लोकातीत, लोक-हेतु, अवाङ्मनसगोचर, सर्वज्ञ, अविज्ञेय, जगदवलम्ब, जगत्प्रभु, सर्वभूतकारण, सृष्टिकर्ता और बृहत् होने से 'ब्रह्मा' कहलाते हैं।[6] जो प्रलय में निमेषादि, काल को भी ग्रास बनाने में सक्षम, मृत्यु के मृत्यु, भय के भय स्वरुप हैं, जो वेदान्तविद्य यत्-तत् शब्द से उपलक्षित हैं।[7]

3. अहिर्बुध्न्य संहिता—2/37
4. लघुभागवतामृम्, सन्दर्भ—भगवत्-तत्त्व, पृ०—163
5. अहिर्बुध्न्य संहिता—2/22—26
6. महानिर्वाण तन्त्र—2/34-40
7. वही—2/45

ब्रह्मदेव का स्वरुप

यद्यपि ब्राह्म पुराणों में त्रिदेवों में प्रथम होते हुए भी पञ्चदेवों में ब्रह्मा का महत्त्व गौण दिखता है। सम्भवतः इसी कारण इसका प्रभाव ब्रह्मदेव की उपासना पर भी पड़ता दिखता है। फलतः इनकी मूर्तियाँ (मन्दिर में स्थापित) भी कम ही दिखती है। लेकिन पुष्कर (अजमेर से छः मील दूर) यहाँ ब्रह्माजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ एक प्राकृतिक जलाशय है, यह तीर्थों में श्रेष्ठ माना जाता है। कहा जाता है यहाँ करोड़ों तीर्थ निवास करते हैं।[8] कार्तिक मास की पूर्णिमा को यहाँ स्नान करने का बड़ा ही महत्त्व है। याज्ञिक कर्म में ब्रह्मदेव की महत्ता स्वयंसिद्ध है। ब्रह्माजी की उपासना सर्वतोभद्र, वास्तु आदि चक्रों एवं मण्डलों में मुख्य रूप से होती है। यज्ञकार्य में प्रयुक्त होने वाली समिधा और यज्ञीय काष्ठपीठ आदि के निर्माण में पलाश-वृक्ष को ब्रह्मा ही स्वरुप माना जाता है। ब्रह्मदेव के दिव्य स्वरुप के वर्णन 'मत्स्यपुराण' में इस प्रकार वर्णित हैं—

ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः। हंसारुढः क्वचित्कार्येः क्वचिच्च कमलासनः।।
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः। कमण्डलुं वामकरे स्त्रुवं हस्ते तु दक्षिणे।।
वामे दण्डधरं तद्वत् स्तुवञ्चापि प्रदर्शयेत्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः।।
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन्न शुक्लाम्बरधरं विभुम्। मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम्।।
आज्यस्थालीं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः। वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम्।।
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्य्याः पैतामहे पदे।[9]

ब्रह्म-सभा

महाभारत के एक आख्यान में ब्रह्म-सभा का वर्णन मिलता है। ब्रह्मसभा की विशिष्टता एवं इसकी अनुपम सौन्दर्य का वर्णन अप्रमेय एवं अलौकिक कहा गया है।

ब्रह्म-सभा या ब्राह्मी-सभा का निर्माण स्वयं ब्रह्माजी ने अपने मानसिक संकल्प से किया है। इस सभा का नाम 'सुसुखा' है। यहाँ न तो सर्दी है और न ही गर्मी। यहाँ आने पर लोगों की भूख, प्यास आदि अनुभव ही नहीं होता। यहाँ किसी भी प्रकार की बाधाएँ एवं नकारात्मक शक्तियाँ लोप हो जाती हैं। यह सभा नित्य कही जाती है— 'एतत् सत्यं ब्रह्मपुरम्।' यह सभा अनन्त प्रभा वाले विविध प्रकाशमान पदार्थों से प्रकाशित होती रहती है। यह प्रकाश सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि से भी अधिक प्रकाशवान होकर इन सबों के प्रकाश को भी तिरस्कृत करती दिखती है। यह सभा स्वयं के प्रकाश से ही प्रकाशित रहती है, अतः इसे 'स्वयम्प्रभा सभा' भी कहा जाता है। इस सभा में समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मदेव देवमाया का आश्रय लेकर समस्त जगत् की स्वयं ही सृष्टि करते हुए यहाँ विराजमान होते हैं।

यह सभा वरुण, इन्द्र, कुबेर के लोकों से भी उपर होकर भी स्वयं देदीप्यमान है। इस सभा में मुख्यरूप से ब्रह्मदेव अकेले ही निवास करते हैं। सभा लगने पर निम्नलिखित देव वहाँ उपस्थित होते हैं—

* प्रजापतिगण— दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, कश्यप, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, अङ्गिरा पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम, अथर्वांगिरस, सूर्यकिरणों के पान करने वाले बालखिल्य, अगस्त्य, मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन, दुर्वासा, ऋष्यश्रृङ्ग, सनत्कुमार, असित, देवल, जैगीषव्य, ऋषभ, मणि, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, अंशुमाली सूर्य, समस्त लोकपाल, सभी ग्रह— शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल, शनेश्चर, राहु, केतु, रहते हैं।

8. महा० वनपर्व—82/21
9. मत्स्यपुराण 259/40-44

* इनके साथ आठों अंगों से युक्त मूर्तिमान् आयुर्वेद, मन, अन्तरिक्ष, विद्या, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकृति, चारों वेद, इतिहास, उपवेद, (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद एवं अर्थशास्त्र) सम्पूर्ण वेदाङ्ग मूर्तिमान होकर ब्रह्माजी की उपासना किया करते हैं।
* वायु, क्रतु, संकल्प, प्राण, धर्म, अर्थ, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम, समस्त मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसुगण, पितृगण, सभी हविष्य, चारों पुरुषार्थ, द्वादश आदित्यगण, सामगान सम्बन्धित मन्त्र, सभी प्रकार के आगमों के मन्त्र भी मूर्तिमान होकर सभा में उपस्थित रहते हैं।
* भगवती सावित्री, दुर्गा, सात प्रकार की प्रणवरूपा वाणी (अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, नाद, बिन्दु, और शक्ति), सरस्वती, मेधा, धृति, श्रुति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा आदि देवियाँ अपने स्वरूपों में स्तुति करती हुई सभा में देहधारी होकर विद्यमान रहतीं हैं।
* समस्त दर्शन, कल्पसूत्र, भाष्य, काव्य, शास्त्रादि भी शरीर धारण कर उपासना किया करते हैं। कालचक्र क्षण से लेकर युग पर्यन्त यथा— क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, छहों ऋतुएँ, साठ संवत्सर, पाँच संवत्सरों का युग, चार प्रकार के दिन-रात (मानव, पितर, देवता एवं ब्रह्माजी के दिन और रात), नित्य, दिव्य, अक्षय, एवं अव्यय, कालचक्र, तथा धर्मचक्र भी देह धारण कर यहाँ मूर्तिमान रूप में उपस्थित रहते हैं।
* सभी वेदोक्त देवियों में अदिति, दिति, दनु, सुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभी, सरमा, गौतमी, प्रभा, कद्रू, देवमाताएँ आदि के साथ-साथ रुद्राणी, श्री, लक्ष्मी, भद्रा, अपरा, षष्ठी, पृथ्वी, गंगा, लज्जा, स्वाहा, कीर्ति, सुरादेवी, शची, पुष्टि, अरून्धती, आशा, नियति, सृष्टिदेवी, रति आदि देवियाँ भी उपस्थित रहकर ब्रह्माजी की उपासना किया करती हैं।
* सम्पूर्ण लोकों में विख्यात स्वर्गलोक में विचरने वाले महाभाग विराज, अग्निष्वात, सोमपा, गार्हपत्य (ये चार मूर्त हैं) तथा एकश्रृंग, चतुर्वेद तथा कला (ये तीन अमूर्त हैं)— ये सातों पितर क्रमशः चारों वर्णों में पूजित होते हैं। पहले इन पितरों के तृप्त होने पर फिर सोम देवता भी तृप्त होते हैं। ये सभी पितर भी यहाँ उपस्थित रहकर ब्रह्माजी की उपासना किया करते हैं।
* इसी प्रकार राक्षस, पिशाच, दानव, गुह्यक, नाग, सुपर्ण, श्रेष्ठ पशु, स्थावर, जङ्गम, इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, पार्वती सहित महादेवजी, कार्तिकेय, भगवान् नारायण, देवर्षिगण एवं दूसरे योनिज एवं अयोनिज ऋषि इस सभा में उपस्थित होकर ब्रह्मदेव की आराधना किया करते हैं।
* वरुण आदि लोकपालों के साथ, पृथ्वी, जल, आकाशादि के अधिदेवता भी इस ब्रह्म सभा में उपस्थित रहते हैं।
* इस सभा में अट्ठासी हजार उर्ध्वरेता ऋषि एवं पचास सन्तानवान् महर्षि उपस्थित रहते हैं।
* ब्रह्मदेव अपनी सभा में सभी अतिथियों—देवता, दैत्य, दानव, नाग, पक्षी, यक्ष, सुपर्ण, कालेय, गन्धर्व, अप्सराओं तथा सम्पूर्ण भूतों से यथायोग्य मिलते हैं तथा उनको अपनाकर, सम्मान देकर, रूचि के अनुसार भोग-सामग्री देकर उनके प्रयोजन की पूर्ति कर उनें अनुगृहित करते हैं।

ब्रह्माजी वेदज्ञानराशिसम्पन्न, शान्त, प्रसन्न चित्त में रहकर सृष्टि के रचयिता के रूप में जाने जाते हैं। ये समस्त प्राणियों की कल्याणकामना किया करते हैं।ये समस्त प्रजा-सन्ततियों का सभी प्रकार से उनका अभ्युदय देखना चाहते हैं, क्योंकि ये लोकपितामह जो हैं। ब्रह्माजी की सभा सभी सभाओं में दुर्लभ मानी जाती है।[10]

10. महाभारत, सभा पर्व—11/12-62

ब्रह्माजी से जनमानस को शिक्षा

लोगों के मन में यह प्रश्न बराबर रहा करता है कि अन्य देवों के अपेक्षा ब्रह्मा का स्थान वैसा नहीं। परन्तु यह हमसबों का भ्रम है। ब्रह्मा का कार्य अत्यन्त दुरूह है। महाप्रलय के बाद जब ईश्वर को सृष्टि निर्माण की इच्छा हुई, तब ईश्वर अपनी बहिरङ्ग शक्ति के माध्यम से प्रकृति को स्पन्दित कर देते हैं जिससे इनमें गतिशीलता आ जाती है, परिणामस्वरुप इनकी अन्य सहायिका चौबीस तत्त्व इससे मिलकर कार्य करने लगती है। ईश्वर के उद्देश्य के अनुसार सृष्टि के मूलभूत समष्टि आत्मा और प्रथम प्राणी हिरण्यगर्भ का प्राकट्य होता है। अभी तक इससे भौतिक सृष्टि नहीं हुई। जब हिरण्यगर्भ (ब्रह्माजी) में तपस्या की योग्यता आयी, तब ईश्वर इन्हें वेद प्रदान करते हैं।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।[11]

'जो परमेश्वर निश्चय ही ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो ब्रह्मा को निश्चय ही समस्त वेद का ज्ञान प्रदान करता है।' कहने का भावार्थ है कि ब्रह्मदेव पहले तपस्या करते हैं, उसके बाद वेदों का आविर्भाव होता है और ब्रह्मा इन्हीं वेद को अपने हृदय में धारण कर अपने चारों मुखों से वेद को कहते हैं यानि ज्ञान देते हैं। इसप्रकार जब ब्रह्माजी को वेद के मिल जाने बाद ही सम्पूर्ण विश्व का निर्माण करते हैं। वेदों की प्राप्ति के बाद ही ये भौतिक सृष्टि रचना में ये समर्थ हुए। वेद को ब्रह्म का मूर्तरूप कहा गया है। वेद के अभाव में ब्रह्मा भी किंकर्तव्यविमूढ थे। इसलिये वेद के लिये 'विद् सत्तायाम्', 'विद् ज्ञाने', 'विद् विचारणे', विद्लृ लाभे' आया है। जिसका अर्थ है— जिसकी सदैव सत्ता हो, जो ज्ञान का भण्डार हो, जो उभयविध विचारों का कोश हो तथा जिससे लौकिक और लोकोत्तर लाभप्रद हो—वेद कहलाते हैं। इसप्रकार परमपूजनीय ब्रह्मदेव के विशिष्ट, अलौकिक, अतुलनीय, अद्भुत कार्य की समीक्षा करना अत्यन्त दुरूह कार्य है।

उपर्युक्त प्रकरणों से हमें यह समझ जाना चाहिये कि आदिस्रष्टा पितामह भी वेदों की सहायता लेकर ही कार्य में प्रवृत होते हैं, तो हम क्यों नहीं इसे आत्मसात् करते! वेद भगवान् के बनाये हुए संविधान हैं, वेदों को ज्ञान का भण्डारगृह कहा गया है। सनातन वस्तु को छोड़ नाशवान के पीछे भागना भौतिकयुग की पहचान बन गयी है और हमारी आधुनिकता भी। आज के वैश्विक दुर्व्यस्तता, दुर्व्यवस्था, दुर्नीति आदि के अतिरिक्त मानवीय त्रितापों आदि का शमन करने में वेद के मंगलकारी ज्ञान पूर्णतः सक्षम हैं, तो हम ब्रह्मस्वरुप सनातन वेदों की ओर क्यों न लौटें !

***

11 (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6/18

देवगढ़ के दशावतार मन्दिर (5वीं सदी) में शेषशायी की नाभि से ब्रह्मा को उद्भूत अंकित नहीं किया गया है, लेकिन वहाँ ब्रह्मा कमलासन पर स्थित और स्वयम्भू हैं। स्कन्द, इन्द्र, ब्रह्मा एकल और शिव पार्वती युगल रूप में है। इसका अर्थ है कि विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न होने की अवधारणा परवर्ती काल की है।

सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा

डॉ० ललित मोहन जोशी*

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा विगत एक-दो शताब्दियों से सनातन-विरोधियों के द्वारा दुष्प्रचार के विषय बना दिये गये हैं। पुराणों का कथा की अप्रासंगिक व्याख्या कर अनेक प्रकार से भ्रान्तियाँ फैलायी जा रही हैं। ठीक इसके विपरीत जब हम पुराणों में ब्रह्मा के प्रसंगों को देखते हैं तथा उनके नाम पर स्थापित तीर्थों का अवलोकन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा की गरिमा किसी से कम नहीं है। इनके नाम पर अनेक तीर्थ हैं। इन्हें सर्वत्र सृष्टिकर्ता तथा पितामह कहा गया है। ब्रह्मा कालगणना के आधार हैं। वे नाथ-सम्प्रदाय में भी सर्वतोभद्र मंडल पर विराजमान हैं, जहाँ उनके आवाहन-मंत्र में उनकी व्यापकता का वर्णन आया है।

सृष्टि आरम्भ होने के समय केवल 'क:' या 'हिरण्यगर्भ:' नामक तत्त्व मात्र था। इस आदि हिरण्यगर्भ का 'गर्भ:' आपोब्रह्म रूप देवी शक्ति या त्रिपादामृत की मूल जननी थी, जिसे **"स मातुर्योना अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश"** (ऋ. 1.164.32) या **"पिता दुहितुर्गर्भमाधात्"**(ऋ. 1.164.3) ऋचा ठीक इसी स्वरूप को वर्णित करती हैं तथा गीता भी **"मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिगर्भं दधाम्यहम्"** और **"तासां ब्रह्ममहद्योनिरहं बीजपदः पिता"** (14.3-4) ठीक इसी आशय का विवेचन दे रही हैं। जो गर्भ है, वहीं योनि भी है, बीजदाता ब्रह्म है।

यह क: प्रजापति या हिरण्यगर्भ सबको आत्माएँ देने वाला है। यह प्रजापति (ब्रह्मा) मूलबीज मनस्-वाक् एवं प्राण तीन का त्रिवृत् है, विवृत् है, प्रवृत् है— **त्रिवृदषि त्रिवृते त्वा** इत्यादि। प्राणों का परिणाम आत्मा में होता है, अत: द्वितीय सप्तक के बातों को आत्मा नाम से पुकारा गया है, वही गर्भ (सृष्टि) भी कहा गया है। जैसे—

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः।[1]

अत: यह आत्मा भी हिरण्यगर्भ का ही विकास है। यह इस ऋचा से स्वयं स्पष्ट है। जिस हिरण्यगर्भ नामक क: प्रजापति ने अपनी (सर्वज्ञता की) महिमा से (भौतिक सृष्टि रचना करने से पूर्व ही) आपो देवियों और दक्ष को धारण करते और यज्ञ या कतु को जन्म लेते देख लिया था, उसकी हम अर्चना करते हैं।

महाप्रलय के बाद कालात्मिका शक्ति को अपने शरीर में निविष्ट कर भगवान् नारायण दीर्घकाल तक योग निद्रा में निमग्न रहे। महाप्रलय की अवधि समाप्त होने पर उनके नेत्र उन्मीलित हुए और सभी गुणों का आश्रय लेकर वे सृष्टि के कार्य के लिए प्रबुद्ध हुए। उसी समय उनकी नाभि से एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिसकी कर्णिकाओं में स्वयंभू ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण ज्ञानमय और वेद रूप कहे गये हैं, प्रकट होकर दिखायी पड़े। उन्होंने शून्य में अपने चारों ओर

1. ऋग्वेद 10-168-4

*विभागाध्यक्ष वाणिज्य एवं प्रबन्धन संस्थान, एम०आई०टी० ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), अध्यात्म में विशेष अभिरुचि के अतिरिक्त भारतीय ज्योतिष का ज्ञान। सम्पर्क— Email: lmjalmora@gmail.com पता— गली न. 8, प्रगति विहार, निकट रघुनाथ मन्दिर, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड)

नेत्रों को घुमा-घुमाकर देखना प्रारम्भ किया। इसी उत्सुकता में देखने की चेष्टा करने से चारों दिशाओं में उनके चार मुख प्रकट हो गये किंन्तु उन्हें कुछ भी दृश्य नहीं हुआ। उन्हें यह चिन्ता हुई कि इस नाभिकमल में बैठा हुआ मैं कौन हूँ और क्यों आया हूँ तथा यह कमल भी कहाँ से आया। बहुत चिन्तन करने पर और दीर्घकाल तक तपस्या करने के बाद उन्होंने उन परम पुरुष के दर्शन किये, जिन्हें पहले कभी देखा न था। ब्रह्माजी ने उन भगवान् विष्णु को सम्पूर्ण विश्व का तथा अपना भी मूल समझ कर उनकी दिव्य स्तुति की। भगवान् ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर उनको सृष्टि की रचना का आदेश दिया।

पुराणों में वर्णित— ब्रह्माजी की उत्पत्ति की कथा

ब्रह्माजी की उत्पत्ति जल में उत्पन्न कमल पर हुई। उन्होंने कमल के डंठल के अंदर उतरकर उसका मूल जानने का प्रयास किया, लेकिन नहीं जान पाए। तब वह पुनः कमल पर विराजमान होकर सोचने लगे कि मैं कहाँ से और कैसे उत्पन्न हुआ? तभी एक शब्द सुनाई दिया "तपसः, तपसः" यानी तपस्या से, तपस्या से उत्पत्ति हुई है। तब ब्रह्मा ने सौ वर्षों तक वहीं आँख बंद कर तपस्या की। फिर ब्रह्माजी को भगवान् विष्णु की प्रेरणा से सृष्टि रचना का आदेश मिला। उन्होंने सर्वप्रथम चार पुत्रों की उत्पत्ति की। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार। ये चारों भी सृष्टि रचना छोड़कर तपस्या में लीन हो गये। अपने मानस पुत्रों की, ऐसे कृत से जब ब्रह्मा क्रोधित हुए तो उनके भौहों से एक बालक का जन्म हुआ। यह बालक रोने लगा, इस कारण इसका नाम रुद्र रख दिया गया। फिर ब्रह्मा ने विष्णुजी की शक्ति से दस तेजस्वी पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम हैं— मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, पुलत्स्य, क्रतु, वसिष्ठ, दक्ष, भृगु और नारद (कतिपय पुराणों में इनकी संरव्या नौ है)। उनके मुख से पुत्री वाग्देवी की उत्पत्ति हुई। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो अंश किए— एक अंश से पुरुष रूप में मनु और दूसरे से स्त्री रूप में शतरूपा को जन्म दिया। मनु और शतरूपा की संतानों को रहने के लिए श्रीहरि ने वराह रूप धारण कर धरती का उद्धार किया।

ब्रह्मा की उत्पत्ति के उपरान्त, ब्रह्मा के पुत्र और पौत्रों के वंश की कथा का विस्तार पुराणों में मिलता है। बहुत से लोग अब्राहम को ब्रह्मा से और नूह को मनु से जोड़कर देखते हैं। कहा जाता है कि जब सरस्वती नदी में तूफान शरू हुआ तब अब्राहम के पिता अपने परिवार के साथ, यह क्षेत्र छोड़कर उर प्रदेश में जाकर बस गये थे। ह.अबाहम (ह. अब्रिहिम) के पिता का नाम तेरह था, जिनकी तीन संतानें— अब्राहम, नाहूर और हराम थे। नूह के दूसरे बेटे शेम की नौवीं पीढ़ी में तेरह हुआ।

"इबाहीम (लगभग 2000 ई०पू.) "अल्लाह (ईश्वर) के आदेश से मेसोपोटेमिया के ऊपर तया हारान नामक शहरों को छोड़कर कनान और मिस्र चले गए। बाइबिल में अब्राहम का जो वृत्तांत मिलता है (उत्पत्ति ग्रन्थ अध्याय 11-25), उसकी रचना लगभग 1000 ई०पू. में अनेक परम्पराओं के आधार पर हुई थी। इब्राहीम उन समस्त लोगों के आध्यात्मिक, पिता माने जाते है, जो एक ईश्वर पर आस्था रखते हैं।"[2]

सृष्टि के सर्जन में शक्ति एवं ब्रह्मा का योगदान

'प्र' उपसर्ग का अर्थ है— प्रकृष्ट और 'कृति' से सृष्टि के अर्थ का बोध होता है, अतः सृष्टि करने में जो प्रकृष्ट (परम प्रवीण) है, उसे देवी प्रकृति कहते हैं। सर्वोत्तम सत्त्वगुण के अर्थ में प्र उपसर्ग, मध्यम रजोगुण के अर्थ

[2] https://hi.m .wikipedia.org/wiki/इब्राहीम (दिनांक 17-7.21 को देखा गया)

में 'कृ' धातु और तमोगुण के अर्थ में 'ति' प्रत्यय है, जो निगुणात्मकस्वरूपा है, वही सर्वशक्ति से सम्पन्न होकर सृष्टिविषयक कार्य में प्रधान है, इसलिये प्रधान या प्रकृति कहलाती है। प्रथम अर्थ में और कृति सृष्टि अर्थ में है। अतः जो देवी सृष्टि की आदि कारणरूपा है, उसे हम प्रकृति कहते हैं। सृष्टि के अवसर पर परब्रह्म परमात्मा स्वयं दो रूपों में प्रकट हुए— प्रकृति और पुरुष, उनका आधा दाहिना अङ्ग पुरुष और वायाँ अङ्ग प्रकृति है। वही प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा (शक्ति), नित्या और सनातनी माया है, जैसे परमात्मा हैं, वैसी उनकी शक्तिस्वरूपा प्रकृति है, अर्थात् परब्रह्म परमात्मा के सभी अनुरूप गुण इन प्रकृति में निहित हैं, जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति सदा रहती है।

"ब्रह्मवैवर्त-पुराण" के प्रकृति खण्ड में यह उल्लेख है कि 'भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छामय सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र परम पुरुष हैं। उनके मन में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न होते ही सहसा 'मूल प्रकृति' परमेश्वरी प्रकट हो गयी। तदनन्तर परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार सृष्टि-रचना के लिये इनके पाँच रूप हो गये। भगवती प्रकृति भक्तों के अनुरोध से अथवा उन पर कृपा करने के लिये विविध रूप धारण करती हैं।' श्रीगणेश की माता भगवती दुर्गा है, उन्हें शिव-स्वरूपा कहा जाता है। ये भगवान् शंकर की प्रेयसी भार्या है। ब्रह्मादि देवता, मुनिगण तथा मनु प्रभृति सभी इनकी पूजा करते हैं। ये सबकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सनातन ब्रह्मस्वरूपा हैं। यश, मंगल, धर्म, श्री, सुख, मोह और हर्ष प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है। जो परम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा है, उन्हें भगवती लक्ष्मी कहा जाता है। परम प्रभु श्रीनारायण की वे शक्ति कहलाती हैं। अखिल जगत् की सारी संपत्तियाँ उनके स्वरूप हैं। उन्हें सम्पति की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। वे परम सुन्दरी, अनुपम संयमरूपा, शांतस्वरूपा, श्रेष्ठ स्वभाव से युक्त तथा मंगलों की प्रतिमा है। लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहंकार आदि दुर्गुणों से वे सहज ही रहित हैं। वे परम साध्वी देवी महालक्ष्मी नाम से विख्यात हैं।

परब्रह्म परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाली वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञान की जो आधिष्ठात्री देवी हैं, उन्हें सरस्वती कहा जाता है। सम्पूर्ण विद्या उन्हीं के स्वरूप है। मनुष्यों को बुद्धि, मेधा, प्रतिभा और स्मरण-शक्ति उन्हीं की कृपा से प्राप्त होती है। सम्पूर्ण संगीत की सन्धि और ताल का कारण उन्हीं का रूप है। वे शांतस्वरूपा है तथा हाथ में वीणा और पुस्तक लिये रहती हैं। उनका विग्रह शुद्धसत्त्वमय है।

चारों वेदों की माता गायत्री चतुर्थ शक्ति है। छन्द और वेदाङ्ग भी उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं। संध्या-वन्दन के मन्त्र और तन्त्रों की जननी भी वे ही हैं। वे ब्रह्मा की परम प्रिय शाक्ति हैं। वे परमब्रह्मस्वरूपा है। मोक्ष प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। वे ब्रह्मतेज से सम्पन्न परम शक्ति हैं। उन्हें शक्ति की अधिष्ठात्री माना जाता है।

राधा प्रेम और प्राणों की अधिदेवी तथा पंचप्राणस्वरुपिणी है। परमात्मा श्रीकृष्ण को प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। सम्पूर्ण देवियों में अग्रगण्य हैं, सबकी अपेक्षा इनमें सुन्दरता अधिक है। ये ब्रह्म के समान ही गुण और तेज से सम्पन्न हैं। गोलोकधाम में रहनेवाली ये देवी रासेश्वरी एवं सुरसिका' नाम से प्रसिद्ध है। रासमण्डली में पधारे रहना इन्हें बहुत प्रिय है। ये गोपी के वेष में विराजती हैं।

इन सभी देवियों का सृष्टि के सर्जन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। "ब्रह्मवैवर्त-पुराण" में उल्लेख आया है कि 'वे सभी देवियों पृथ्वी पर पुण्यक्षेत्र भारत में पूजित हुई है। दुर्गा दुर्गति का नाश करती है। राजा सुरथ ने सर्वप्रथम इनकी उपासना की है। इसके पश्चात् रावण का वध करने की इच्छा से भगवान् श्रीराम ने देवी की पूजा की है। तत्पश्चात् भगवती जगदम्बा तीनों लोकों में सुपूजित हो गयीं। पहले दैत्यों और दानवों का वध करने के लिये ये दक्ष के यहाँ प्रकट हुई थी। परन्त् कुछ काल के पश्चात् पिता के घर में स्वामी का अपमान देखकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। फिर ये हिमालय की पत्नी के उदर में पल कर उत्पन्न हुई। उस समय इन्होंने भगवान् शंकर को पति

रूप में पुनः प्राप्त किया। गणेश और स्कन्द —इनके दो पुत्र हुए। गणेश को स्वयं कृष्ण माना जाता है। स्कन्द विष्णु की कला से उत्पन्न हुए हैं— नारद। इसके बाद राजा मंगल ने सर्वप्रथम लक्ष्मी की आराधना की है। तत्पश्चात् तीनों लोकों में देवता, मुनि और मानव इनकी पूजा करने लगे। राजा अश्वपति ने सबसे पहले सावित्री की उपासना की, फिर प्रधान देवता और श्रेष्ठ मुनि भी इनके उपासक बन गये। सबसे पहले ब्रह्मा ने सरस्वती का सम्मान किया। इसके बाद ये देवी तीनों लोकों में देवताओं और मुनियों की पूजनीया हो गयीं।'

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति के स्थान, अजन्मा, अविनाशी, आश्रयस्वरूप, चराचर जगत् को धारण करने वाले तया परमपदस्वरूप हैं, जिन्हें आदि पुरुष ब्रह्मा कहा जाता है, जो उत्पत्ति, पालन और संहार के कारण हैं, किसी के पुत्र न होकर स्वयंभू है, जिनमें सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है, जो हिरण्यगर्भ, लोकसृष्टि में लगे रहनेवाले और परम बुद्धिमान् हैं, उन भगवान् ब्रह्मा का सृष्टि सर्जन में निरन्तर दिये जाने वाले योगदान अव्यक्तनीय हैं,

"मार्कण्डेय पुराण" में यह व्यक्त है कि पूर्वकाल में अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी के प्रकट होते ही उनके मुखों से कमशः पुराण और वेद प्रकट हुए, फिर महर्षियों ने पुराण की बहत सी संहिताएँ रचीं और वेदों के भी सहस्र विभाग किये। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य —ये चारों महात्मा ब्रह्माजी के उपदेश बिना नहीं सिद्ध हो सकते थे। ब्रह्माजी के मानसपुत्र सप्तषियों ने उनसे वेदों को ग्रहण किया और ब्रह्माजी के मन से उत्पन्न हुए भृगु आदि ऋषियों ने पुराण को अपनाया। भृगु से च्यवन ने और च्यवन से ब्रह्मर्षियों ने उसे प्राप्त किया। फिर उन्होंने दक्ष को उपदेश दिया और दक्ष ने मुझे (मार्कण्डेय ऋषि) इस पुराण का सुनाया था।

ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति के कारक है। वे रजोगुणक उपभोग करते हुए सृष्टि में प्रवृत्त होते हैं और अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। फिर परमेश्वर सत्त्वगुण के उत्कर्ष से युक्त होकर श्रीविष्णु का स्वरूप धारण कर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते है। फिर तमोगुण की अधिकता से युक्त हो कर रुद्र रूप धारण करके सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं और निश्चिन्त रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजी सृष्टि, पालन और संहार — इन तीनों कालों में तीन गुणों से मुक्त होकर कार्य करते हैं।

ब्रह्मा के दिवस की गणना

ब्रह्मा का एक दिन 1000 चतुर्युगियों का होता है, जिसमें पृथ्वी आदि की उत्पत्ति, उसके संसार का व्यवहार आदि होते हैं और रात होने पर सब लय हो जाता है। ब्रह्मा की रात भी दिन के बराबर कहीं गयी है। ब्रह्मा के एक दिन में 14 मनु राज्य करते हैं, इससे एक मनु का राज्य अथवा मन्वन्तर लगभग 1000×14 = 71चतुर्युगों का होता है।[3]

प्राचीन भारतीयों ने समय के निम्नलिखित विभाग किये —

15 निमेष = 1 काष्ठा, 30 काष्ठा = 1 कला, 30 कला = 1 मुहूर्त, 30 मुहूर्त = 1 मानव दिवस

30 मानव दिवस+रात्रि = मानव का एक मास, मानव के 6 मास = 1 अयन

कुल दो अयन होते हैं— उत्तरायण तथा दक्षियायण। उत्तरायण देवताओं का दिन है तथा दक्षिणायण देवताओं की रात्रि।

3. रायबहादुर, श्री विष्णस्वरुपजी, "हमारे युग और पृथ्वी की उत्पत्ति का समय", **'सिद्धान्त'** वर्ष 13, अंक 10, 1956ई० पृ. 205

अतः देवताओं का दिन = 6 मास, देवताओं की रात्रि = 6 मास, अत: देवताओं का दिन + देवताओं की रात्रि = 12 मास = 1 वर्ष, (मानव के एक वर्ष = देवताओं का एक दिन)

इसी भाँति देवताओं का वर्ष = 360 देवताओं के दिन+रात्रि = 360 वर्ष तथा देवताओं के 100 वर्ष = 360×100= 36000 वर्ष तथा देवताओं के 12000 वर्ष = 360×12000 = 4320000 वर्ष। 12000 दिव्य वर्ष (43,20,000 वर्ष) का यह काल चतुर्युग कहलाता है।

ज्योतिर्विदों ने वह एक वर्ष में 1 कला माना है, अर्थात् पूरा चक्कर 60×360 = 21600 वर्ष में होता है। यही युग है, ऐसे 50 चक्करों का महायुग और 4 महायुगों की एक चतुर्युगी कही जाती है, इस हिसाब से एक चतुर्युगी 21600×50×4 = 43,20,000 वर्ष की होती है। यह संख्या अथर्ववेद' में दो, तीन, चार अयुत करके उल्लिखित है। धर्माधर्म, पुण्य-पाप इत्यादि के विचार से हमारे महर्षियों ने इसे चार युगों – कलि, द्वापर, त्रेता और कृतयुग में 1/2/3/4 के अनुपात में बाँटा है, जिससे कलियुग 4,32,000 वर्ष का, द्वापर युग 8,64000 वर्ष का, त्रेतायुग 12,96,000 वर्ष का और कृतयुग 17,28,000 वर्ष का माना गया है। कृत पहला और कलि चौथा गिना जाता है।[4]

देवताओं के 12000 वर्ष की गणना

सतयुग	=	4000 दिव्य वर्ष
सतयुग के पहले संध्या	=	400 दिव्य वर्ष
सतयुग के पश्चात् सध्यांश	=	400 दिव्य वर्ष
त्रेता युग	=	3000 देवीय वर्ष
त्रेता युग के पहले संध्यांश	=	300 देवीय वर्ष
त्रेता युग के पश्चात् संध्याश	=	300 दिव्य वर्ष
द्वापर युग	=	2000 दिव्य वर्ष
द्वापर युग के पहले संध्या	=	200 देवीय वर्ष
द्वापर युग के पश्चात् संध्यांश	=	200 देवीय वर्ष
कलियुग	=	1000 दिव्य वर्ष
कलियुग के पश्चात् संध्या	=	100 दिव्य वर्ष
कलियुग के पश्चात् संध्या	=	100 दिव्य वर्ष
कुल योग	**=**	**12000 दिव्य वर्ष**

1 चतुर्युग = 12000 दिव्यवर्ष = 4320,000 वर्ष

1000 चतुर्युग = ब्रह्माका 1 दिन = 1 कल्प= 132,00,00,000 वर्ष

इसके आगे इसी भांति ब्रह्मा के वर्ष की गणना की जा सकती है। ब्रह्मा के एक दिन में 14 मनु शासन करते हैं। एक मनु का शासनकाल मन्वन्तर कहलाता है।

अत: मन्वन्तर = ब्रह्मा का 1 दिन×14 = 4,32,00,00,000 ×14 = 30,85,71,435 वर्ष

सृष्टि केवल ब्रह्मा के एक दिवस के पर्यन्त रहती है, उसके पश्चात् प्रलय हो जाता है।

4. उपरिवत्

ब्रह्माजी के मानस पुत्र

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने अपने ही सदृश मानस-पुत्रों का सर्जन किया। उनमें से सर्वप्रथम उत्पन्न ऋभु तथा सनत्कुमार थे। ये दोनों ब्रह्मचारी थे। आठवाँ कल्प व्यतीत होने पर प्राचीन एवं लोक साक्षी ये दोनों वाराहकल्प में अपने तेज को संक्षिप्त करके पृथ्वीलोक में अधिष्ठित हुए। मोक्ष के लिये कर्मपरायण ये दोनों (मानसपुत्र) आत्मा को अपने में स्थिर करके पूजा, धर्म तथा काम का त्याग करके वैराग्य में स्थित हो गये। सनत्कुमार जिस रूप में उत्पन्न हुए थे, वैसे ही कुमार रूप में विद्यमान रहे, इसलिये इनका नाम सनत्कुमार प्रसिद्ध हुआ। इसके उपरान्त ब्रह्मा ने सनन्द, सनक तथा विद्वान् सनातन को उत्पन्न किया। वे विशेष ज्ञान के द्वारा सांसारिकता से निवृत्त रहे। प्रजाओं की सृष्टि किये बिना ही वे मोक्ष को प्राप्त हुए।

उन सबके मोक्ष को प्राप्त हो जाने पर ब्रह्मा ने अपने स्थान के अभिमानी तथा कार्यक्षम अन्य मानस पुत्रों का सर्जन किया, जिन्होंने प्रलय पर्यन इस पृथ्वी को धारण किया। इसके बाद ब्रह्मा ने जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, समुद्रों, नदियों, पर्वतों, वनस्पतियों औषधियों वल्लियों, वृक्षों, झाड़ियों, लताओं, काष्ठाओं, कलाओं, मुहूर्तों, सन्धियों, रात्रि, दिन, पक्षों, मासों, अयनों, वर्षा तथा युगों का सर्जन किया।

आपोऽग्निं पृथिवी वायुमन्तरिक्षं दिवं तथा। समुद्रांश्च नदीश्चैव तथा शैलवनस्पतीन्।।
ओषधीनां तथात्मानो वल्लीनां वृक्षवीरुधाम्। लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः सन्धिरात्र्यहान्।।
अर्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च। स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः।।[5]

ब्रह्मा ने इसके अतिरिक्त नौ मानस पुत्रों का भी सर्जन किया— मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अति तथा वसिष्ठ। इसके उपरान्त उन्होंने सुख देने वाले धर्म एवं संकल्प का भी सर्जन किया। प्रभु ब्रह्मा के मन से (प्रजापति) रुचि नामक मानस पुत्र भी उत्पन्न हुए।

ब्रह्माजी के चौदह मनु

ब्रह्माजी के एक दिन में 14 मनु शासन करते हैं। एक मनु का शासनकाल 'मन्वन्तर' कहलाता है। 'मनु' जिस क्रम में शासन करते हैं, उनके नाम इस प्रकार है—

1. स्वायंभु मनु, 2. स्वरोचिष् मनु, 3. उत्तम मनु,4. तामस मनु, 5. रैवत मनु, 6 चक्षुष् मनु, 7 वैवस्वत मनु, 8 सावर्णि मनु, 9. दक्ष सावर्णि मनु, 10. ब्रह्म सावर्णि, 11. धर्म सावर्णि मनु, 12. रुद्रपुत्र सावर्णि मनु, 13. रुचि मनु, 14 भौम मनु

सम्प्रति वैवस्वत मनु का शासन चल रहा है, जिसकी पुष्टि संध्या, देवपूजन तया किसी भी धर्मकार्य के प्रारम्भ में लिये जानेवाले निम्न संकल्प से होती है—

ॐ विष्णवे नमः,ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः। ॐ अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथममचरणे बौद्धावतारे भूलोके जम्बूद्वीपे भारतखण्डे..."[6]

5. श्रीलिंगमहापुराण (सत्तरवाँ अध्याय) 178-180, गीताप्रेस गोरखपुर सं. 2075
6 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश (संकल्प) पं० श्रीराम भवनजी मिश्र, श्रीलालबिहारीजी मिश्र, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2076, पृ. 35

उपर्युक्त संकल्प में "श्वेतवाराहकल्पे" के पहले के शब्द में ब्रह्मा की आयु बतलाई गई हैं। इस कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) का नाम श्वेतवाराह कल्प है तथा इस कल्प में वर्तमान मन्वन्तर वैवस्वत (सातवां) मन्वन्तर है, जैसा कहा है, "वैवस्वतमन्वन्तरे" तथा इस मन्वन्तर में वर्तमान कलियुग अट्ठाईसवां कलियुग है, जैसा कि कहा है, "अष्टाविंशति कलियुगे" कहा गया है।

अत: मन्वन्तरानुसार पृथ्वी की वास्तविक आयु की गणना इस प्रकार होगी :

6 मन्वन्तर = 30, 85,71,435×6 = 18,5,14,28,610 वर्ष

27 चतुर्युग = 43,20, 000×27= 11, 66, 40,000 वर्ष

28 वें सतयुग, त्रेता, द्वापर युगों का काल उनकी संध्या व संध्यांश सहित— 10800×360= 38,88,000 वर्ष

अत: इस कलियुग के प्रारम्भ लगभग 5000 वर्ष पूर्व तक पृथ्वी की आयु = योग = 197,19,56,610 वर्ष

अर्थात् 1 अर्बुद, 96 कोटि वर्ष 1 अयनांश साल में 1 कला न लेकर 50 विकला लेने से 2 अर्बद 35 कोटि होता है। पश्चिमी ज्योतिर्विदों का अनुमान भी 2 और 3 अर्बुद के मध्य का ही है। उपर्युक्त गणना से हम अपने महर्षियों की जितनी भी प्रशंसा करें, कम है।

पूर्वपुरुष ही स्वायम्भुव मन कहे जाते हैं। इनका इकहत्तर चतुर्युगी मन्वन्तर कहा जाता है। इन्होंने शतरूपा को पत्नी रूप में प्राप्त किया। शतरूपा सर्जन करने वाले ब्रह्मा के आधे शरीर से नारी रूप में उत्पन्न हुई थी। वे ही रति' कही जाती हैं। कल्प के आदि में यह पहला परस्पर संयोग हुआ। ब्रह्मा ने विराट् को उत्पन किया था, वे पुरुष ही विराट् थे। मनु मे प्रजासर्ग का सर्जन किया। शतरूपा ने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो लोकमान्य पुत्रों को उत्पन्न किया। उन्होंने दो महाभाग्यशालिनी कन्याओं को भी उत्पन किया, जिनसे ये प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं। वे दोनों देवी आकूति प्रसूति नामवाली थीं

कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाता इमा : प्रजा:। देवी नाम तथाकूति: प्रसूतिश्चैव ते उभे।।[7]

ब्रह्मा द्वारा निर्मित मानसागर एवं ब्रह्मा और शारदा का वाहन हंस

ब्रह्मा और सरस्वती को छोड़कर प्रत्येक देवता और उनकी शक्ति का वाहन पृथक्-पृथक् हैं। यथा — शंकर जी का वाहन वृषभ है और पार्वती का वाहन सिंह, विष्णुजी का वाहन गरुड है और लक्ष्मी का वाहन उल्लू; किन्तु ब्रह्मा और माँ शारदा का वाहन अलग-अलग न होकर एक ही है— 'हंस'। 'हंस' शब्द का अर्थ है— "वह प्राणी, जिसकी गति बहुत ही सुन्दर है (हन्ति= सुन्दरं गच्छति)' तथा जो विना प्रयास ही जल पर तैरता रहता है। जल भी कैसा? जो कैलाश पर्वत पर स्वयं ब्रह्मा द्वारा निर्मित शुभ, शीतल तथा सुन्दर सरस जल, जहाँ उसे मुक्ताओं का आहार मिलता है, इसीलिए हंस को मानसालय' की भी संज्ञा दी गयी है।

कैलासपर्वते राम मनसा निर्म्मितं परम्॥ ब्रह्मणा नरशार्दूलं तेनेदं मानसं सर:।।[8]

अर्थात् हे राम! कैलास पर्वत पर एक सरोवर है, जिसे ब्रह्माजी ने अपने मन के संकल्प से प्रकट किया था। हे नरशार्दूल! मन के द्वारा उत्पन्न होने से ही उसे मानस सरोवर कहते हैं।

हेमपुष्कर सञ्च्छन्नं तेन वैखानसं सर:। कम्पितं मानसश्चैव राजहंसनिषेवितम्।।[9]

7. श्री लिंगपुराण (सत्तरवाँ अध्याय) 276, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2075

8. रामायण, आदिकाण्ड, सर्ग 24, 8-9

9. महाभारत, 3, 230,71

अर्थात् उससे धीर प्रकृति के वानप्रस्थी तपस्वियों के अन्तर भी इस प्रकार काँपने लगे, जिस प्रकार तैरते हुए राजहंसों की गति के कारण पीत कमलों से युक्त मानस सरोवर का जल प्रकम्पित हो उठता है।

केवल इतना ही नहीं, हंस के लिए यह भी कहा गया है—

शुचिश्रवा हृषीकेशो घृतार्च्चिर्हंस उच्यते।[10]

अर्थात् हंस उस प्राणी को कहते हैं, जो स्पष्ट सुननेवाला हो, जिसके पर के रोम, केश, पतनादि देखने में बहुत सुन्दर तथा प्रीतिकर हों।

(हृष्टा जगत्प्रीतिकरा: केशा रश्मयोऽस्य हृषीकेश:) तथा जो घृत की आभावाला हो, अर्थात् कुछ-कुछ पीलापन लिये हुए श्वेत वर्ण का हो।

जीव-जन्तु विज्ञान भी यह बतलाता है कि हंस की ध्वनिग्राहक शक्ति (फोनोरिसेप्शन) बहुत ही सूक्ष्मग्राही होती है। यदि ऐसा प्राणी ब्रह्मा एवं माँ शारदा ने अपना वाहन चुना है, तो उचित ही है, क्योंकि ब्रह्मा निर्मल ज्ञान के प्रतीक हैं— उनके मुखारविन्द से चारों वेद प्रकट हुए हैं। उन्हीं से ज्ञान की उत्पत्ति हुई और माँ शारदा— बुद्धि मेधा, प्रतिभा और स्मरण शक्ति की प्रतीक है।

ब्रह्मकपाल का पौराणिक महत्त्व (बद्रीनाथ धाम)

उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल बद्रीनाथधाम से पाँच सौ मीटर की दूरी पर स्थित ब्रह्मकपाल में अलकनन्दा नदी के किनारे एक विशाल शिला (पत्थर) उपस्थित है, जहाँ हवन कुण्ड में पितरों के उद्धार के लिए पिण्डदान कर हवन किया किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि यदि किसी व्यक्ति की अकाल मृत्यु हो जाए तो ब्रह्मकपाल में श्रद्धापूर्वक, श्राद्ध कर्म करने से दिवंगत आत्मा को शान्ति मिलती है। स्कन्दपुराण में इस पवित्र स्थान को गया से आठ गुना अधिक फलदायी तीर्थ कहा गया है। यहाँ पिण्डदान करने से पितरों की आत्मा को शान्ति मिलती है। यहाँ स्थित तप्तकुण्ड में स्नान करने के बाद तीर्थ पुरोहित के द्वारा श्राद्ध कर्म कराया जाता है।

इस स्थान के सम्बन्ध में पौराणिक मान्यता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के समय जब ब्रह्मा माँ सरस्वती के रूप पर मोहित हो गए ये तो भोलेनाथ ने क्रोध में आकर ब्रह्मा के पाँच सिरों में से एक को त्रिशूल से वार कर काट दिया था। तब ब्रह्माजी का सिर त्रिशूल पर ही चिपक गया। ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति पाने के लिए जब भोलेनाथ पृथ्वीलोक के भ्रमण पर गए तो बद्रीनाथ के पास ही ब्रह्माजी का सिर त्रिशूल से अलग होकर पृथ्वी पर गिर गया। तभी से यह स्थान ब्रह्मकपाल के नाम से प्रसिद्ध है। शिवजी भी इसी स्थान पर ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हुए थे। गोत्रहत्या के पाप से मुक्ति पाने के लिए स्वर्ग की ओर

ब्रह्मकपाल पर श्राद्ध करते सनातनी

[10] महाभारत, 12, 43, 7

जा रहे पाण्डवों ने भी इसी स्थान पर अपने पितरों का तर्पण किया था एवं श्राद्धकर्म किया था।

ब्रह्मकपाल का मनोरम दृश्य

गंगा और अलकनन्दा के संगम में ब्रह्मकुण्ड (ब्रह्मतीर्थ)

स्कन्द-पुराण के केदार खण्ड (अध्याय 151) में नारद एवं स्कन्द संवाद का वर्णन इस प्रकार दिया है। नारद बोले– हे देवश्रेष्ठ, गंगा और अलकनन्दा के संगम में ब्रह्मकुण्ड पुण्यतम कहा गया है। किस कारण से ब्रह्मकुण्ड नाम पड़ा ? भगवन्, यह मुझे बताये, क्यों ब्रह्मा ने तप किया?

ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं जाह्नव्यलकनन्दयो:। सङ्गमे देवशार्दूल महापुण्यतमं स्मृतम्॥
केन वै कारणेनाभूद् ब्रह्मकुण्डं हि नामकम्। एतन्मे शंस भगवन् कथं ब्रह्मा तपोऽकरोत्॥[11]

स्कन्द बोले– नारद! सुनो, ब्रह्मकुण्ड का विस्तार में बता रहा हूँ, जिस प्रकार तीर्थराज का सर्वपापहारी नाम पड़ा। नारद, पूर्वकाल में कल्प के प्रारम्भ में संसार के जलमग्न हो जाने पर न तो रात थी, न दिन था, न संख्या थी, न सरोवर, न सूर्य, न चन्द्रमा, न मनुष्य, न राक्षस, न पिशाच, न गन्धर्व और न किन्नर थे। महामति नारद, (उस समय) कुछ भी नहीं था। तब गुणों से परे, गुणग्राही, चिदानन्दस्वरूप, निरीश्वर, विभु, सबके कर्ता, पालक, नाशक- गुणों की खान भगवान् ने अपनी माया से सृष्टिलीला करने की इच्छा की। तब जल में शयन करने वाले भगवान् के नाभिकमल से चार मुख वाले दमयुक्त चार हाथ वाले महाकान्ति वाले और दण्ड एवं पुस्तक धारण किये हुए ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनसे गदाधर भगवान् ने कहा– सृष्टि करो। ब्रह्मा ने कहा– मैं सृष्टिकर्म में अशक्त हूँ। तब ब्रह्मा सृष्टिकर्म सम्बन्धी शक्ति प्राप्त करने के लिए तप करने चले गये। उन्होंने युक्त आहार और विहार के साथ तीव्र तप किया। हे मुनिश्रेष्ठ, दश हजार और दश सौ वर्षों तक विभु नारायण का ध्यान करते हुए ब्रह्मा समाधिस्थ रहे।

गंगा एवं अलकनन्दा का संगम, ब्रह्मकुण्ड

ब्रह्माजी की तपस्या से प्रसन्न होकर भी भगवान् (नारायण) बोले– महाभाग! सृष्टि करो; तुम्हारी तपस्या से में सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे जैसा मेरा भक्त कभी नहीं हुआ। भक्तनायक, यह स्थान अत्यन्त पावन तीर्थ है। तो भी अट्ठाइस युग परिवर्तन होने पर यह और पुण्यतम होगा। सूर्यवंश को बढ़ाने वाला महाराज भगीरथ तपस्या से

11. स्कन्दपुराण (केदारखण्ड) हिन्दी अनुवाद, शिवानंद नौटियाल (डॉ०) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् 1994, अध्याय 151, 1-2.
12. स्कन्दपुराण -तदेव - अ. 151, 33-34.

प्रसन्न शिव की कृपा से गंगा को ले आयेगा। ब्रह्मन्, पितरों की मुक्ति के लिए जब वह ले आयेगा तब इस तीर्थराज का नाम उत्तम होगा। यह ब्रह्मतीर्थ के नाम से उत्तम ख्याति प्राप्त करेगा।

पितॄणां मुक्तये ब्रह्मन् तदा यास्यसि कारणात्। तदास्य तीर्थराजस्य भविता नाम चोत्तमम्।।
ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातिं यास्याति प्रवरां तथा।[12]

वर्तमान में यहाँ कुण्ड नहीं है, किन्तु दोनों नदियों के संगम को ही ब्रह्मकुण्ड माना जाता है।

नाथ सम्प्रदाय में ब्रह्माजी का स्थान

नाथ-सम्पदाय भारत का एक हिन्दू धार्मिक पन्थ है। मध्ययुग में उत्पन्न इस सम्प्रदाय में बौद्ध, शैव तथा योग की परम्पराओं का समन्वय दिखायी देता है। शिव इस सम्प्रदाय के आदि गुरु एवं आराध्य देव हैं। इस सम्प्रदाय में मच्छेन्द्रनाप तप्पा गुरु गोरखनाप्प सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। मच्छेन्द्रनाथ 8वी-9वीं सदी के योग सिद्ध, तन्त्र परम्पराओं तथा गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) 10 वीं - 11वीं शताब्दी में जन्म, मठवादी नाथ सम्प्रदाय के संस्थापक, व्यवस्थित योग तकनीकी के संगठन, हठयोग के ग्रन्थों के रचयिता एवं निर्गुण भक्ति के विचारों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। भारत में नाथ सम्प्रदाय को योगी, जोगी, नाथ, अवधूत,दत्त, गोस्वामी आदि नामों से जाना जाता है।

नाथ सम्प्रदाय में सर्वतो महारुद्र नवनाथ चौरासी सिद्धचक्र (सर्वतोभद्रमण्डल) का विशेष महत्त्व है, जिसमें एकमुखी से लेकर 20 मुखी तक रुद्राक्ष स्थापित किये जाते हैं। चक्र के मध्य में ॐकार आदित्यनाथ की स्थापना एक मुखी रुद्राक्ष रखकर, पूर्व दिशा में दो मुखी रुद्राक्ष (अर्धनारी नटेश्वर) और नौमुखी रुद्राक्ष (नौ दुर्गा अवतार, दुर्गा पार्वती स्वरूप का, पूर्व में ही चारमुखी रुद्राक्ष (जहाँ चारमुखी रुद्राक्ष ब्रह्माजी के चार मुख का प्रतीक है। दक्षिण में दस या बीस मुखी रुद्राक्ष के साथ विष्णुजी, दक्षिण में ही अचल अचंबेनाथजी आठ मुखी रुद्राक्ष के साथ, चक्र के पश्चिम भाग में गजबेली गज कन्थड़जी नाथ, गणेश रुद्राक्ष के साथ सिद्ध चौरंगीनाथ जी अठारह मुखी रुद्राक्ष के साथ पश्चिम दिशा में, मत्स्येन्द्रनाथजी चौदह या सोलह रुद्राक्ष के साथ उत्तर दिशा में, तथा श्री शम्भुजती गुरु गोरक्षनाथ एक या निर्मुखी रुद्राक्ष के साथ स्थापित किये जाते हैं। वर्णित सभी देवताओं एवं नाथो को स्थापित करते समय विविध मंत्रों से आवाहन किया जाता है। ब्रह्माजी का आवाहन मन्त्र इस प्रकार है —

सत्यनाथ ब्रह्माजी :— ॐ गुरुजी सत नमो आदेश। गुरूजी को आदेश ॐ गुरुजी परब्रह्म ऊपर ब्रह्मा का वासा। न था युग, न थी जुग, न थी धरती, न था आकाथ, वृक्ष नहीं, डाल नहीं, शून्य नहीं, मूल नहीं, देही नहीं, देवरा नहीं, पूजा नहीं पाती, न था पवन, न पा पाणी जहाँ सदाशिव ने ध्यान लगाया ब्रह्मा विष्णु के नाभ से पाया सिद्धां ने सतनाथ ब्रह्मजी नाम से सजाया। ओ ब्रह्म सतनाथ जलस्वरूपी जा जा तेरा शिवलोक में वासा कहे शिवजी सुन पार्वती चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, नव व्याकरण, संध्या, तर्पण, गंगा, गायत्री मंत्र, सूर्य मंत्र, बीज मंत्र, होम, जाप, सूतक, पातक, सोलह शृंगार यह सब ब्रह्माजी का काज। जपे जाप ब्रह्म लोक में जाय। ना जपे नर नरक में जाय। इतना सत्यनाथ ब्रह्माजी जाप सम्पूर्ण भया नाथजी गुरुजी को आदेश (पूर्व मध्यमा) ॐ भूर्भुवः स्वः सत्यनाथ ब्रह्माजी आवाहन स्वापयामि।।[13]

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि नाथ सम्प्रदाय में त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को सर्वतोभद्रचक्र में समान रूप से स्थान देकर पूजा गया है एवं उनका आवाहन किया जाता है।

13 श्रीनाथ रहस्य, योगी विलासनाथ, प्रकाशक- अखिल भारतीय अवधूत शेष बारह पंथ योगी महासभा, हरिद्वार पृ0 62 (संवत् - 2057)

नाथ सम्प्रदाय के कई शाबर मन्त्रों में ब्रह्माजी को विष्णु एवं शिवजी की भाँति महत्त्व दिया गया है अर्थात् त्रिदेव शाबर मन्त्रों में समान रूप से पूजनीय हैं। कतिपय मंत्र उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

लक्ष्मी प्रतिष्ठान संकल्प कराने के लिए मंत्र —

ॐ ओम पूर्णागामी यशस्वी देव, संकल्प निरमानी भाग्व वृती निर्माणी भन जगतम् प्रायधानी जड़-चेतन वनस्पति प्रक्रतिया याम् ब्रह्मा विष्णु शिवम् जाग्रति जाग्रति लक्ष्मी रमणी .... "[14]

श्रीसूर्य नारायण देव मंत्र —

सूर्य नारायणी नारायणी जगत नारायणी बसमति ब्रह्मा विष्णु शिवम् चराचर जगतम फिरूयामि, जैमिनि सागरम् जाग्रति जाग्रति चमामि चमामि सूर्य अस्ती ब्रह्मलोक .... "[15]

जीव के अस्वस्थता की अवस्था में स्वस्थ होने की कामना हेतु मंत्र —

ॐ नरमणी नरमणी भवति: सुधा सागर नमस्ते नमस्ते भास्यन्ति भास्यन्ति यूगे यूगे: ब्रह्म विष्णु महेश अष्टदेव यशस्वी यशस्वी काल निरूसितम् भुगेन्द्र भुमेन्द्र .... "[16]

पुष्कर तीर्थ का माहात्म्य

पुष्कर के उद्भव का वर्णन पद्मपुराण में मिलता है। कहा जाता है कि ब्रह्मा ने यहाँ आकर यज्ञ किया था। हिंन्दुओं के प्रमुख तीर्थस्थानों में पुष्कर ही ऐसी जगह है, जहाँ ब्रह्मा का मन्दिर स्थापित है। पुष्कर का उल्लेख रामायण में भी हुआ है।

पुष्कर में ब्रह्माजी का मन्दिर

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा भूयस्तेपे महातपाः।
पुष्करेषु नरश्रेष्ठ शतवर्षशतानि च॥[17]

इस श्लोक में विश्वामित्र के द्वारा यहाँ तप करने की बात कही गई है।

साँची स्तूप दानलेखों में, जिनका समय ई०पू. दूसरी शताब्दी है, कई बौद्ध भिक्षुओं के दान का वर्णन मिलता है, जो पुष्कर में निवास करते थे। पांडुलेन गुफा के लेख में, जो ई० सन् 125 का माना जाता है, उषवदात का नाम आता है। यह विख्यात राजा नहपाण का दामाद था और इसने पुष्कर आकर 3000 गायों एवं एक गाँव दान किया था।

इन लेखों से पता चलता है कि ई० सन् के आरम्भ से या उसके पहले से पुष्कर तीर्थस्थान के लिए विख्यात था। स्वयं पुष्कर में भी कई प्राचीन लेख मिले है, जिनमें सबसे प्राचीन लगभग 925ई० सन् का माना जाता है।[18]

अजमेर से 6 कि.मी. दूर स्थित पुष्कर तीर्थ में ज्येष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ नामक तीन कुण्ड हैं। उषवदात के

14. श्रीनाथ सिद्ध, तन्त्रमन्त्र-टोटके, महावीर नाथ सैनी, गुरु गोरखनाथ मन्दिर, हरिद्वार सन् 2013.
15. उपरिवत्　　16. उपरिवत्
17. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 62 श्लोक 28
18. https://hi.m.wikipedia.org/wiki/पुष्कर (दिनांक 17-7-21 को देखा गया)

पुष्कर में ब्रह्मा की मूर्ति

नासिक शिलालेख में इन कुण्डों पर उसके द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख है। 'वायुपुराण' एवं 'कूर्मपुराण' में यह उल्लेख है कि पुष्कर में श्राद्ध करने से अनन्त फल प्राप्त होता है। यह कहा जाता है कि पुनीत सरस्वती यहीं से समुद्र की ओर गयी है। ब्रह्माजी ने यहाँ पुष्कर अर्थात् कमल गिराया था। ब्रह्माण्ड-पुराण में उल्लेख आया है कि परशुराम ने यहाँ अपने शिष्य अकृतव्रण के साथ सौ वर्षों तक तपस्या की थी।

मान्यता है कि यहाँ आदि शंकराचार्य ने संवत् 713 में ब्रह्मा की मूर्ति की स्थापना की थी। मन्दिर का वर्तमान स्वरूप गोकलचंद पारेख ने 1809 ई० में बनवाया था। मन्दिर के पीछे रत्नागिरि पहाड़ पर ब्रह्माजी की प्रथम पत्नी सावित्री का मन्दिर है। यज्ञ में शामिल नहीं किए जाने से कुपित होकर सावित्री ने केवल पुष्कर में ब्रह्माजी की पूजा किए जाने का शाप दिया था। तीर्थराज पुष्कर को सब तीर्थों का गुरु कहा जाता है। इसे पाँच तीर्थों में श्रेष्ठ स्थान दिया गया है (पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया, हरिद्वार और प्रयाग)।

***

ब्रह्मा की पुत्री : तुला

आज तो बाजार में तौल करने के नित नए यन्त्र देखने को मिलते हैं लेकिन तुला के नाम से जिस पुराने साधन का जिक्र है, वह ब्रह्मा की पुत्री है और आदित्या कहलाती थी। बृहत्संहिता (अध्याय २६) में जो आर्ष मंत्र हैं, वे मत्स्यपुराण (अध्याय 274) में भी हैं :

ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता। काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला।।

ताकड़ी, कांटा, तराजू, तल... पलड़ों वाले तराजु से लेकर कमानीदार तुला और अब इलेक्ट्रॉनिक बेलेंस तक आ चुके हैं। मगर, पारंपरिक तुला शायद सब्जी बेचने वालों के पास ही देखने को मिले जहाँ आज भी बटखरों का प्रयोग होता है... शायद पत्थर के बटखरे आज भी मिल जाए। चाणक्य ने तुला का वर्णन किया है, पुराणों में तुला महादान का वर्णन मिलता है। शिलालेखों में भी तुलापुरुष के दान का विवरण मिल जाता है। तुलजा भवानी की मान्यता भी रही है। क्षेमेंद्र ने तुला के प्रयोग और उनके बटखरों के बारे में जो जानकारियाँ दी हैं, वे प्राचीन काल ही क्या, आज भी लगता है जीवंत है। तराजू सोलह तरह की होती थी- वक्रमुखी (बांके कांटे वाली), विषमपुटा (नीची ऊंची), सुषिर तला (पलड़ों में छेद वाली), न्यस्त पारदा (पारे से भरी), मृद्वी (मुलायम पत्तर से बनी हुई), पक्षकटा (बगल कटी), ग्रंथिमती (गांठ पड़ी डोरी वाली), बहुगुणा (बहुत ही डोरियों वाली), पुरोनम्रा (आगे की ओर झुकी हुई), वातभ्रान्तता (हवा से डगमगाने वाली), तन्वी (हल्की), गुर्वी (भारी), परुषवात घृतचूर्णा (तेज हवा में धूल को जमा करने वाली), निर्जीवा एवं सजीवा।

है न तुला के अजीबो गरीब प्रकार, मगर इन पर सहज ही विश्वास होता है। और भी कई प्रकार हो सकते हैं। हमारे यहां रोड़ा और कांटा भी शब्द आए हैं—

काली घणी कुरूप, कस्तूरी कांटा तुले। सक्कर घणी सरूप, रोडा तुलै राजिया।।

और हां, बटखरे कैसे कैसे- सोपस्नेह (चिकनाई वाले बाट), स्वच्छ (चिपचिपे), सिक्थक मुद्रः (मोम लगाकर वजन बढ़ाये गए), बालुका प्राय (रेत लगाए गए)। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आज तक बटखरों का इतिहास रोचक रहा है। ब्रह्मा की पुत्री कहने के मूल में तुला की सत्यता और प्रामाणिकता बड़ा कारण रहा है। - डा. श्रीकृष्ण "जुगनू"

ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे

पं० मार्कण्डेय शारदेय*

सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा यज्ञ के अध्यक्ष माने गये हैं। वे दक्षिण भाग में बैठे हुए निरीक्षण करते हैं कि सब कुछ सही चल रहा है या नहीं। अग्नि की रक्षा का दायित्व उन्हीं के उपर होता है। इस प्रकार, प्रत्येक कर्मकाण्ड में जहाँ कहीं भी हवन होता है, ब्रह्मा की स्थापना की जाती है। ब्रह्मा के इस स्वरूप पर विस्तार से विमर्श यहाँ प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन काल में सबसे अनुभवी, विद्वान् तथा वृद्ध व्यक्ति को यज्ञ में ब्रह्मा बनाया जाता था, पर धीरे-धीरे ऐसे व्यक्ति के अभाव में कुश के ब्रह्मा का भी प्रचलन हुआ। लेखक ने स्पष्ट किया है कि यज्ञ में योग्यतम व्यक्ति को ब्रह्मा बनाया जाये। इस प्रकार, यज्ञ में ब्रह्मा की भूमिका पर यहाँ आलेख प्रस्तुत है।

शास्त्रार्थ से जुड़ा प्रश्न है—

उत्तरे सर्वतीर्थानि उत्तरे सर्वदेवताः।
उत्तरेऽपां प्रणयनं किमर्थं ब्रह्म दक्षिणे।।

(यज्ञमीमांसा, लेखक— पं, वेणीराम शर्मा गौड, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी)

अर्थात्; उत्तर दिशा में यज्ञ के सभी पात्र रखे जाते हैं, उत्तर में ही सभी देवता (मेरु पर्वत की ओर संकेत) रहते हैं, उत्तर में ही प्रणीता के जल का प्रणयन (ढकना) होता है; तो ब्रह्मा दक्षिण दिशा में क्यों रहते हैं?

इसके दो तरह के उत्तर मिलते हैं—

यमो वैवस्वतो राजा वसते दक्षिणा दिशि।
तस्य संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे।।(वही)

अर्थात्; दक्षिण दिशा में ही यम एवं वैवस्वत राजा रहते हैं, उनसे रक्षा करने के लिए ब्रह्मा दक्षिण रहते हैं।

पुनश्च;

दक्षिणे दानवाः प्रोक्ताः पिशाचोरग-राक्षसाः।
तेभ्यः संरक्षणार्थाय ब्रह्मा स्थाप्यस्तु दक्षिणे।।(वही)

अर्थात्; दक्षिण दिशा में दानवों, पिशाचों, नागों तथा राक्षसों का निवास माना गया है, उनसे रक्षार्थ ब्रह्मा का स्थापन दक्षिण विहित है।

यह परमेष्ठी ब्रह्मा की बात नहीं। उनका तो सत्यलोक है।वह वहीं से सृष्टिविधान में तत्पर रहते हैं। यह नवग्रह-मण्डल के अन्तर्गत दशदिक्पालों में आनेवाले ब्रह्मा की भी बात नहीं। कारण कि दिक्पालों में नवम स्थान है और दिशा आकाश है। उन्हें आकाशस्थ मानकर ही ईशान और इन्द्र के बीच स्थापन-पूजन होता है। यहाँ केवल अग्न्याधान से जुड़े याजकों के एक वरिष्ठ सदस्य व तदभाव में कुशमय ब्रह्मा की बात है। इन्हीं का स्थापन कुण्ड (वेदी) के दक्षिण में होता है।

* सनातन ज्योतिष, पाटलिग्राम एपार्टमेंट, शहीद भगत सिंह पथ, बजरंगपुरी, गुलजारबाग, पटना—800007 मो. 8709896614, Mail : markandeyshardey@gmail.com

भारतीय संस्कृति यज्ञमय है। यहाँ धर्म-कर्म में विभेद नहीं। इसीलिए हमारा कार्य यदि धर्मसम्मत है तो सुकृत और विरुद्ध है तो दुष्कृत है।आम तौर पर यज्ञ का अर्थ किसी पूजा-पाठ का बृहत् आयोजन समझा जाता है, परन्तु यह एक भेद है, जिसे हम द्रव्ययज्ञ भी कह सकते हैं। गीता यज्ञभेद दिखाती कहती है

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञा योगयज्ञाः तथापरे। स्वाध्याय- ज्ञानयज्ञाः च यतयः शंसितव्रताः।। (4.28)

अर्थात्; व्ययसाध्य इष्टापूर्त कर्मों में विशेषतः पूर्त कर्म, व्रतोपवास रूपी तपःकर्म, अष्टांग योग को साधने में तत्परता, स्वाध्याय (पठन के साथ आत्मचिन्तन भी) में लगे रहना, तत्त्वचिन्तन तथा अन्य प्रकार के भी यज्ञ ही हैं, जिन सत्कर्मों के पालन में लोग सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

यज्ञ का प्रचलन कब से? तो; प्राग्वैदिक काल से ही मानना अतिशयोक्ति नहीं होगी।कारण कि विश्व का प्रथम साहित्य ऋग्वेद अपनी प्रथम ऋचा में ही इसकी महत्ता निर्दिष्ट करते कहता है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।(ऋग्वेद, 1.1.1)

अर्थात्; मैं यज्ञ के पुरोहित व ऋत्विजों में विशिष्ट देवताओं के आवाहक (होता) दीप्तिमान (देव) अग्नि की स्तुति करता हूँ, जो रत्न धारण करनेवाले हैं।

जब ऋग्वेद सबसे पहले यज्ञ शब्द लेकर आया तो स्पष्ट है कि इससे पूर्व प्रचलन अवश्य रहा होगा।लेकिन जैसे ब्रह्मा ही सृष्टिकर्ता हैं, पर मानसी सृष्टि के अनन्तर अपना कार्यभार अपने मानस पुत्रों प्रजापतियों पर डाल दिया था, जीवनपद्धति ऋषियों को बनाने को आदिष्ट किया था, वैसे ही यज्ञीय विस्तार एवं नियमन भगवान वराह से हुआ। इसी कारण उनका एक नाम यज्ञवाराह है।

कालिकापुराण के अनुसार वराह की अंगसन्धियों से अलग-अगल यज्ञ हुए। भौंह- नाक की सन्धि से ज्योतिष्टोम, ठुड्डी-कान की सन्धि से अग्निष्टोम, नेत्र-भौंह की सन्धि से व्रात्यष्टोम, थूथन-ओठ की सन्धि से पुनर्भवष्टोम यज्ञ उत्पन्न हुए। इसी तरह अन्यान्य सन्धियों से बृहत्ष्टोम, अतिरात्र, पंचयज्ञ, अश्वमेध, महामेध, राजसूय, वाजपेय, प्रतिष्ठा, उत्सर्गयज्ञ, सावित्रीयज्ञ, प्रायश्चितयज्ञ, वृक्षयज्ञ, नैमित्तिक यज्ञ-जैसे साठ हजार तरह के यज्ञ उत्पन्न हुए।

यज्ञों के आविर्भाव के बाद अंगसन्धियों से यज्ञीय उपकरणों का भी जन्म हुआ।थूथन से स्रुक्, नाक से स्रुवा, गले से प्राग्वंश, कान के छिद्रों से इष्टापूर्त, दाँतों से यूप, रोमों से कुश, पैरों से उद्गाता, अध्वर्यु, होता एवं शामित्र, मस्तिष्क से चरु-पुरोडाश, नेत्रों से कण्डे, खुरों से पताकाएँ, जननांग से यज्ञकुण्ड, शुक्र से घी, पृष्ठ से यज्ञशाला एवं स्वधामन्त्र, हृदयकमल से स्वयं यज्ञ भगवान हुए।

इस तरह यज्ञीय व्यवस्था प्रकटित हुई।सुवृत्त, कनक एवं घोर; ये तीन जो वराहपुत्र थे, उनके शरीर को पिण्ड बनाकर ब्रह्मा ने सुवृत्त, विष्णु ने कनक तथा शिव ने घोर को अपने मुँह से फूँका तो क्रमशः दक्षिणाग्नि, गार्हस्पत्य एवं आहवनीय; इन तीन अग्नियों का उद्भव हुआ।

मतलब यह कि हिरण्याक्ष के संहार एवं पृथ्वी के उद्धार हेतु अवतरित वराहरूपी विष्णु अपनी इहलीला के उपरान्त अपने सर्वांग को यज्ञात्मक बनाकर लोकहित में समर्पित कर दिया।

यह तो पौराणिक हुआ।पुरुषसूक्त भी यज्ञ को लेकर बहुत मुखर है। मनुस्मृति भी राजा को निर्दिष्ट करती है कि वह पुरोहित-ऋत्विक् (ऋत्विज्) का वरण करे और उनकी सहायता से शान्तिकर्म व अश्वमेधादि यज्ञ करे (7.78-79)।

मनु के उपर्युक्त कथन एवं अग्निमीळे पुरोहितम्...से जान पड़ता है कि दोनों भिन्न हैं।जहाँ पुरोहित सामान्य धार्मिक सहायक है, वहीं ऋत्विक् विशिष्ट। ऐसी बात नहीं कि वे अयोग्य हों, क्योंकि चाणक्य कहते हैं

वेद-वेदांग-तत्त्वज्ञो जपहोम-परायणः। आशीर्वाद-वचोयुक्तः एष राजपुरोहितः।।

जब भाष्यकार पतंजलि कहते हैं— ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्यो ज्ञोयश्च तो वह मूर्ख कैसे रह सकता? हाँ ; विदेशी प्रहारों के कारण ही बाद में गिरावट आई। खैर; ये पुरोहित यन्त्र, मन्त्र एवं तन्त्र के भी विशेषज्ञ थे और राजा के कल्याण के लिए धार्मिक उपचार करते रहते थे। विशेष धर्मिक प्रयोजन पर जैसे ब्रह्मपुत्र महर्षि वसिष्ठजी ने पुत्रेष्टियज्ञ के निमित्त श्रृंगी ऋषि के आचार्यत्व में कराया, वैसे ही राजपुरोहित भी किया करते होंगे।

ऋत्विक् को परिभाषित करते मनु ने कहा है—

अग्न्याधेयं पाकयज्ञान् अग्निष्टोमादिकान् मखान्।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते।।(2.143)

अर्थात्; जो अग्न्याधान, पाकयज्ञ एवं अग्निष्टोम-जैसे यज्ञों में जिसकी ओर से आचार्यादि के रूप में वृत होकर कार्य करता है, वह ऋत्विक् कहलाता है।

ऐतरेय ब्राह्मण (9.8) में स्पष्ट उल्लेख है— ऋत्विजि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितः (सम्पूर्ण यज्ञ ऋत्विक् पर ही निर्भर हैं)।

साहित्यदर्पण भी राजा के धार्मिक कार्य में सहयोग करनेवाले पुरोहित, ऋत्विक् एवं ब्रह्मज्ञानी तपस्वियों का उल्लेख करता है— **ऋत्विक्पुरोधसः स्युः ब्रह्मविदः तापसाः तथा धर्मे** (3.45)।

यहाँ इन तीनों में अन्तर यही जान पड़ता है कि पुरोहित का स्थायी पद है, जिसकी जीविका के साधन राजा को ही जुटाने पड़ते हैं। वह सदा राजोपकार में लगा रहता है। ऋत्विक् अस्थायी पद है, जो यज्ञविशेष में निमन्त्रित तथा वृत हो यज्ञसम्पादन कर तदर्थ दक्षिणा लेता है— यो दक्षिणादिना परिक्रीतः श्रौत-स्मार्तादीनि कर्माणि करोति स ऋत्विक् (पास्कर गृह्यसूत्र की विवृति)।

अब ब्रह्मविद् तपस्वी की बात करें तो उन्हें न तो वृत्ति की अपेक्षा रहती और वे न तो यज्ञ करानेवालों की तरह दक्षिणाजीवी ही होते हैं।वे पूर्ण स्वतन्त्र एवं परमानन्द-परायण होते हैं।उन्हें भौतिक सम्पदा की तनिक भी चाह नहीं होती। हाँ; आर्त, जिज्ञासु जन यदि उनसे मार्गदर्शन चाहते हैं तो उदारतापूर्वक वैसा करते हैं।

यों तो यज्ञों की विविधता है, पर किसी यज्ञविशेष का नाम न ले ऐसे कहें कि जिसमें हवन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, उन सबमें बहुत से ब्राह्मण होते हैं। उनका विभाग भी है— आचार्य, ब्रह्मा, सदस्य, उपद्रष्टा, गाणपत्य (गणपति), द्वारपाल, जापक, होता तथा ऋत्विक्। इतने न भी हों तो विवाह, जनेऊ, गृहप्रवेश आदि में प्रबुद्ध पुरोहित ही सारी भूमिका निभा लेते हैं।फिर भी अग्निस्थापन, हवन हो और ब्रह्मा न हों, यह शास्त्रसिद्ध नहीं। हँसी की बात तो यह है कि कुछ लोग किसी अनपढ़ व अल्पशिक्षित, अथवा वयोवृद्ध को ब्रह्मा के रूप में वरण कर लेते हैं।

यज्ञ में आचार्य, ब्रह्मा, सदस्य, गाणपत्य, उपद्रष्टा तथा ऋत्विक् का स्थान शास्त्रीय है। इनमें आचार्य बृहस्पति का, ब्रह्मा विधाता का, सदस्य यज्ञीय कार्यों में आचार्य के सहायतार्थ, गाणपत्य विघ्ननिवारक गणेश का, उपद्रष्टा सम्प्रदायगत व कुल-क्षेत्रगत विवादों के शमनकर्ता के रूप में एवं वेदरूप में ऋत्विक् का प्रतिनिधित्व है।इन सबमें किसी पद पर अयोग्य व अल्पज्ञ का वरण धर्मविरुद्ध है।

वस्तुतः, याज्ञिक (यजमान) को जनता माना जाए तो यज्ञपुरोहित संसदीय विधान के अनुरूप विजयप्राप्त महानुभावों (सांसदों) के प्रतीक हैं। इनमें बृहस्पति के पद पर हमारे प्रधानमन्त्री के रूप में आचार्य और राष्ट्रपति के रूप में ब्रह्मा हैं। उपद्रष्टा को संसदीय कार्यमन्त्री और गाणपत्य को लोकसभाध्यक्ष मान सकते हैं।

खैर; मुख्य बात यह कि आचार्य और ब्रह्मा, दोनों में किनका उच्च स्थान है? तो; ब्रह्मा तो सर्वश्रेष्ठ हैं ही, पर यज्ञ में उनकी भूमिका मूकद्रष्टा की ही है। उनका अधिकार है कि यदि आचार्य मन्त्रोच्चारण व विधिपालन में शिथिलता दिखाते हैं तो मार्गनिर्देश करें। टोक-टाक करें। हम ऐसे भी समझ सकते हैं कि जैसे गुरु स्वयं उपस्थित रहे और सुयोग्य शिष्य से कहे कि तुम यह कार्य करवाओ। यदि भूल हो तो सुधारे।

पूजाविधियों में तो ब्रह्मा की उपस्थिति विशेष मायने नहीं रखती, पर कुशकण्डिका से हवन पूर्ण होने तक उनकी सम्यक् उपस्थिति महत्त्व रखती है। इसीलिए यजमान का कथन है– कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्मत्वेन त्वाम् अहं वृणे (यज्ञीय कार्यों में क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है, यह देखने के लिए मैं आपका ब्रह्मा के रूप में वरण कर रहा हूँ)।

आचार्य और ब्रह्मा में पद के रूप में ब्रह्मा की मुख्यता है तो कर्मकाण्डीय विधियों के सम्यक् निर्वहण के कारण आचार्य की।इसी कारण पहले आचार्य-वरण, तत्पश्चात् ब्रह्मवरण होता है। अनन्तर अन्य का। आचार्य-वरण में बृहस्पति-मन्त्र से – ॐ बृहस्पतेऽअतियदर्यो... से तो ब्रह्मवरण ब्रह्मा के वैदिक मन्त्र– ॐ ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् ... से।

सबसे बड़ी बात पद्धतियों में स्थित दोनों से की जानेवाली प्रार्थना है।आचार्य के लिए यजमानकृत प्रार्थना है–

आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः। तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् आचार्यो भव सुव्रत।।

(ग्रहशान्ति, वायुनन्दन मिश्र, प्रकाशक– मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, वाराणसी)

अर्थात्; व्रत-नियमों का सम्यक् पालन करनेवाले हे महानुभाव! जैसे स्वर्ग में इन्द्रादि देवों के आचार्य बृहस्पति हैं, वैसे ही आप मेरे इस यज्ञ का आचार्यत्व करें।

ब्रह्मा से प्रार्थना है–

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्वलोक- पितामहः। तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोतम।।

-(ग्रहशान्ति, वही)

अर्थात्; हे ब्राह्मणोत्तम! जैसे चतुरानन ब्रह्मा समस्त लोकों के पितामह हैं, वैसे ही आप मेरे इस यज्ञ में ब्रह्मा के रूप में विधानद्रष्टा, निर्देष्टा बनकर रहें।

अब प्रश्न है कि अंगिरा- पुत्र बृहस्पति तो ऋषि हैं उनकी विद्वत्ता एवं दिव्यता के कारण देवताओं का आचार्यत्व प्राप्त रहा।तत्सम वेदों के विद्वान यज्ञाचार्य बनते हैं तो विशेष बड़ी बात नहीं।कारण कि ऋषिमत के पालन में ही ब्राह्मणों का ब्राह्मणत्व, भूदेवत्व, अग्रगण्यता एवं पूजनीयत्व है। इसका सूत्रात्मक रूप पुण्याह-वाचन की इस प्रार्थना में स्पष्ट दीखता है–

व्रत-नियम-तपः-स्वाध्याय-क्रतु-शम-दम-दया-दान-विशिष्टानां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम्।

अर्थात्; व्रतों, नियमों, तपस्या, स्वाध्याय तथा यज्ञीय विधियों के पालन में सदैव तत्पर, शान्तचित्त, मनोनिग्रही, दयालु एवं त्यागशील ब्राह्मणों का मन समाहित हो।

जो स्रष्टा का मुख (ब्राह्मणोऽ अस्य मुखमासीत्) व वयोवरता, धनवरता व बलवरता की अपेक्षा ज्ञानवृद्धता ही जिनका वास्तविक वरीयता है, इसी कारण षट्कर्माओं को ऐसा स्थान प्राप्त है।

फिर भी; किसी ब्राह्मण को ब्रह्मा कैसे माना जाए? पुनः ब्रह्मा क्यों? धरती पर एक से एक ऋषि रहे, हैं तो उन्हीं को स्थान दिया जाता! ऐसा नहीं। कारण है कि वही निराकार, निरंजन, निर्लेप, नपुंसक ब्रह्म के प्रथम साकार,

गुणमय, पुरुषरूप सुरज्येष्ठ विरञ्चि हैं। उन्होंने ही ब्रह्म की व्यापकता को सृष्टिकर्म से रूपायित कर अनुभूयमान, दृश्यमान, श्रूयमाण बनाया है।वह समस्त जड़-चेतन जगत् के पूर्वजों के पूर्वज हैं। पुनः सर्वं खल्विदं ब्रह्म; अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है (छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.1) के प्रथम प्रमाण हैं, इसलिए उनकी महिमा में कहा गया–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (यजुर्वेद–10.121.1)

अर्थात्; सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ का आविर्भाव हुआ। वही स्थूल-सूक्ष्म स्थावर-जंगम प्राणियों का एकमात्र उत्पादक, पति व स्वामी हुआ। उसने धरती और आकाश को धारण किया।उसे छोड़ और किस देवता को हवि देकर यजन हो? अथवा; उस आद्य प्रजापति ब्रह्मा को (कस्मै) हम हवि देकर यजन करें।

यों तो कालिदास सर्वशक्तिमान परमात्मा के इस रूप ब्रह्माजी के चार मुखों को पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष), युगचतुष्टय एवं वर्णचतुष्टय से जोड़ते हैं–

चतुर्वर्ग-फलज्ञानं कालावस्थाः चतुर्युगाः।
चतुर्वर्णमयो लोकः त्वत्तः सर्वं चतुर्मुखात्।। (रघुवंश–10.22),

परन्तु विष्णु-धर्मोत्तर पुराण के अनुसार चतुरानन के चारों मुख चारों वेदों के द्योतक हैं–

ऋग्वेदः पूर्ववदनं यजुर्वेदस्तु दक्षिणम्। पश्चिमं सामवेदः स्याद् आथर्वणमथोत्तरम्।।
ये वेदास्ते मुखा ज्ञेयाश्चतस्रो बाहवो दिशः। (3.46.8-9)

वेद ही हमारे यज्ञों के आधार हैं, हमारी संस्कृति की आत्मा हैं, इसीलिए श्रुति-स्मृति-विहित कर्म धर्म है। इस कारण ब्रह्मा की मुख्यता है।

अन्य युगों में देवताओं की साक्षात् उपस्थिति मानी गई है, पर कलिकाल में नहीं।इसी कारण आप्तवाक्य एवं अनुमान के आधार पर विग्रह-पूजन चला। हमारे यहाँ यज्ञोपवीत आदि संस्कारों, वास्तुयज्ञ आदि में विहित हवनकर्म में ब्रह्मवरण है। ऐसे में प्रतिमा-प्रतिष्ठा सहज नहीं, क्योंकि प्रतिमा-स्थापन अपने आप में एक बड़ी यज्ञीय प्रक्रिया है।दूसरी तरफ मुखसंज्ञक किसी तपोधन का वरण अपेक्षया सहज रहा। इसी कारण कर्मकाण्डीय पुरोहितों में ब्रह्मा का चुनाव होता रहा। हाँ; विकल्प रूप में कुशमय ब्रह्मा का भी विधान है।

यज्ञ में ब्रह्मा के लक्षण पर कात्यायन का कथन है– ब्रह्माणं वृणुते ब्रह्मिष्ठम्।(कर्मकाण्ड-प्रदीप, प्रणेता– श्री अण्णा शास्त्री खरे, सम्पादक– पं० वासुदेव शास्त्री पणशीकर, प्रकाशक– चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी)।इसपर कर्क का कथन है– ब्रह्मिष्ठम् इति च पदार्थ-सतत्वोपजातावबोधेन।नहि परमात्माख्य- ब्रह्मसतत्वोवबोधोऽत्रोपयुज्यते (वही)। उनका कहना है कि यदि ऐसे ब्राह्मण न हों तो कुश के ब्रह्मा को ही स्थान दें।

कुशमय ब्रह्मा के बारे में कहा गया है– पंचाशता भवेद् ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः।अर्थात्; पचास कुशों का ब्रह्मा बनाएँ और पच्चीस कुशों का उनका विष्टर (आसन) (वही)।

यहीं ब्रह्मा के आसन के बारे में कहा गया है–

आसनं ब्रह्मणः कार्यं वारणं वा विकन्तकम्। हस्तमात्रं चतुःस्त्रक्तिः मूलदण्ड- समन्वितम्।।

पं० अशोक कुमार गौड 'वेदाचार्य' (सर्वदेव-प्रतिष्ठा- महोदधिः, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी) बताते हैं कि कुशकण्डिका को ही कहीं-कहीं होम कहा गया है– एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः (पा. गृ. सू. 1.1.27)। उन्हीं के अनुसार इस पास्करीय सूत्र से यह विधि (अग्निमुख) गार्ह्य, स्मार्त, तान्त्रिक और लौकिक हवनकर्म में सर्वत्र आवश्यक है।

कुशकण्डिका के अन्तर्गत भूशोधन, उपलेपन, रेखाकरण, मृत्तिका का उद्धरण, अभ्युक्षण (अभिषिंचन), अग्न्याहरण, अग्निसंस्कार, अग्निपूजन, अधिदेवताओं -प्रत्यध्यधि देवताओं के साथ नवग्रहपूजन, पंचलोकपाल-पूजन के पश्चात् दशदिक्पाल- पूजन की विधि आती है। अनन्तर ब्रह्मवरण एवं पूजन है। ब्रह्मा की आज्ञा ले व उनका मुख देखते अपने सामने रखे प्रणीता को जल से पूर्ण कर अग्नि के उत्तर उसे स्थापित करना, कुशपरिस्तरण, पवित्रक से जलप्रोक्षण,—जैसी प्रक्रियाएँ हैं।

कुशकण्डिका-करण में वायुनन्दन मिश्र लिखते हैं—

अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनम्। अग्नेरुत्तरतः प्रणीतासनद्वयम्। ब्रह्मासने ब्रह्मणोपवेशनम्। यावत् कर्म समाप्यते तावत् त्वं ब्रह्मा भव इति यजमानः। भवामीति ब्रह्मा वदेत्।

(अग्नि से दक्षिण ब्रह्मा का आसन। अग्नि के उत्तर प्रणीता के दो आसन। ब्रह्मा के आसन पर ब्रह्मा का बैठना। यजमान द्वारा यह प्रार्थना कि जब तक कार्य पूरा नहीं होता, तब तक आप ब्रह्मा बने रहें।बना रहूँगा, यह ब्रह्मा की स्वीकृति।)

उपर्युक्त बातें ब्रह्मा बने ब्राह्मण के सन्दर्भ में हैं, क्योंकि उनसे ही संवाद सम्भव है। जहाँ कुशमय ब्रह्मा हों, वहाँ वरण नहीं, पूजन ही सम्भव है।

ब्रह्मोपवेशनम् की टिप्पणी में वायुनन्दन मिश्र जी **पंचाशता भवेद् ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः** कहते हैं। यानी; पचास कुशों के ब्रह्मा होते हैं तथा पच्चीस कुशों का उनका विष्टर (बिठई, बिस्तर) है।

हवन के समय ब्रह्मा से सम्बद्ध अन्वारम्भ व अन्वारब्ध है, जिसमें याज्ञिक दाहिना घुटना टेककर ब्रह्मा को कुशों से स्पर्श करते हुए अथवा उनकी ओर देखते चौदह व नव आहुतियाँ करता है। शेष आहुतियों में ब्रह्मा से कोई लगाव नहीं।अन्त में ब्रह्मा के निमित्त दक्षिणा के साथ पूर्णपात्र का दान होता है।

यज्ञः कर्म-समुद्भवः (गीता—3.14)। अर्थात्; शास्त्रोचित तथा एकात्मक कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्मों का प्रतीक ही यज्ञ है।यह सृष्टि का व्यापार भी है। ऐसे में स्रष्टा का प्रतिनिधित्व व समादर अनिवार्य है।ब्रह्मा देव, दानव, यक्ष, राक्षस, मानव एवं छोटे-बड़े जीव-जन्तुओं से लेकर निर्जीव समस्त पदार्थों के भी पूर्वज हैं।वह सबसे सम भाव रखते हैं। इसीलिए तपःशील दैत्य-राक्षस ही क्यों न हों; उचित वरदान देने में पीछे नहीं हटते, भेद-भाव नहीं पालते। वह पूरी सृष्टि के हितैषी हैं। जब उनके पद पर कोई व्यक्ति बैठे तो उसे ब्रह्मनिष्ठ होना ही चाहिए। उसमें गीतोक्त (5.18) समदर्शिता होनी ही चाहिए, तभी वह ब्रह्ममुख हो सकता है।

हाँ; आज ऐसे व्यक्तियों का, खासकर कर्मकाण्डियों का अभाव-सा है। यही कारण है कि योग्याभाव में दर्भवदु (कुशमय) आचार्यादि को नहीं, ब्रह्मा को ही स्थान दिया गया है। एक बात और; ब्रह्मा के स्थान पर कमण्डलु, छत्र व उत्तरीय के रूप में भी रखने की बात कही गई है। इससे स्पष्ट है कि यज्ञीय कार्यकारिणी में आचार्य की मुख्य भूमिका है, पर गुणवत्ता के कारण ब्रह्मा की ही अध्यक्षता है। पुनश्च; वह दक्षिण में स्थान इसलिए ग्रहण करते हैं कि दैत्य, दानव, राक्षस-जैसे तमोगुणी भी उनकी इज्जत करते हैं। उन्हें यज्ञीय चीन की दीवार मान विघ्न डालने नहीं आते।

***

ब्रह्मा, ब्राह्मपर्व और प्रतिमा स्वरूप

डॉ० श्रीकृष्ण 'जुगनू'*

ब्रह्मा के सम्बन्ध में पौराणिक कथाओं की दुर्व्याख्या कर जो भी प्रचारित किया जाये, इतना तो निश्चित है कि वे सदा से जन-मानस तथा शास्त्रों में पूज्य रहे हैं। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, भाग्य लिखते हैं, ब्राह्मी लिपि के जनक है, सभी शास्त्रों के प्रवर्तक हैं। दैत्य-दानव-देव-मानव सब के प्रति समभाव रखनेवाले ब्रह्मा ने कभी स्वयं अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं किया, पर वे ब्रह्मास्त्र के अधिष्ठाता है। वस्तुतः ब्रह्मा ज्ञानमय हैं, ब्राह्मतेज के आदिदेव हैं। उनके अनेक मन्दिरों तथा मूर्तियों का भी यहाँ विवेचन किया गया है।

पितामह ब्रह्मा के विषय में एक सूत्र है, जो महाभारत और रामायण से मिलता जाता है कि प्राचीन, प्रभावी, वरदायक देवता ब्रह्माजी शिव और विष्णु के अभ्युदय के साथ अप्रभावी होते जाते हैं। हम देखते हैं कि रावणादि को इच्छित वर पितामह देते हैं और उनका वध अवतारी विष्णु करते हैं। महाभारत में "सीधे-सादे व्यक्ति को कोई आदर नहीं देता", इस उक्ति की पुष्टि में कहा गया है कि ब्रह्मा, धाता और पूषा की कोई किसी तरह भी पूजा अर्चा नहीं करते हैं; क्योंकि वे सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति समभाव रखते हैं, किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते हैं :

न ब्रह्माणं न धातारं न पूषाणं कथञ्चन।। (राजधर्मानुशासन, 15, 18)

आचार्य वराहमिहिर (587 ई०) एक उदाहरण में कहते हैं कि पितामह अपने सम्मान से वंचित हुए और इसके मूल में उनके प्रति प्रचारित की गई कहानियाँ रहीं। इनमें लिंगोद्भव आख्यान बड़ा उदाहरण है। उसमें पितामह को मिथ्या भाषण करते बताया गया है। शिवधर्मपुराण, लिंगपुराण, स्कन्दागम और अपराजितपृच्छा आदि में यही कहानी दोहरायी गई है।

इस बात के प्रमाण लगातार खोजे जा सकते हैं कि 10वीं सदी के बाद शैवों और वैष्णव मान्यताओं के प्रभाव के कारण मध्य भारत से भी पितामह असहाय-जैसे हुए और पुराण-कथाओं में वे केवल आर्त प्रजा, देवताओं के साथ कभी शिव तो कभी विष्णु की स्तुति गायक होकर रह गए न कि अन्य देवों की तरह वरदायक।

कार्तिक पूर्णिमा : पौष्कर पर्व

कृतिकाओं की जगमग-जैसी निशा वाला पर्व है कार्तिक पूर्णिमा! लोकांचल के लिए यह सबसे सुखद पर्व इस अर्थ में रहा कि कृतिकाओं से जगर-मगर आसमान की तरह जल राशि को भी जगमग किया जाए और इसलिए सरोवरों, पुष्करियों, ह्रद-चश्मों में आटे के दीयों को वंश निर्मित झांजों पर जमाकर प्रज्वलित किया जाता और बहाया जाता। अब भी इसके कुछ प्रमाण बचे हैं और वहाँ के प्रमाण ज्यादा हैं जहाँ इस पर्व को विदेश गमन का अवसर नहीं बताया जाता, बल्कि सरोवरों के जल को सृष्टिकर्ता के आसन पद्म का विकासक माना जाता है।

* लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर- 313001, राजस्थान, दूरभाष संपर्क : 099280-72766, मेल : skjugnu@gmail.com

कृतिका से नक्षत्र गणना करने से बहुत पहले क्या था? इस दिवस को पूर्ण चंद्रमा का पर्व मानकर तथा ज्ञानाध्ययन और ज्ञान के प्रसार के लिए उपयोगी मानकर आदि ज्ञानापदेशक के रूप में ब्रह्मा की आराधना की जाती थी। नदियों, सरोवरों के तट पर दीपदान कर ज्ञानराशि के दीप्तिमय रहने की कामना की जाती थी। जल को भी आलोकित करने का आत्मिक सुख बटोरा जाता था। हमारे यहाँ ज्ञान के प्रवर्तक के रूप में ब्रह्मा का प्रथमत: स्मरण किया जाता रहा है। प्रत्येक विद्या, प्रत्येक कला, प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान और प्रत्येक नीति के प्रवर्तक के रूप में ब्रह्मा का ही स्मरण किया जाता रहा है। वे ही प्रथम मुनि स्वीकारे गए -

प्रथममुनिकथितमवितथमलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम्।

यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा ने ही प्रत्येक ज्ञानानुशासन का बहुत विस्तार से प्रतिपादन किया। पुराने ग्रंथों का एक लक्षण यह है कि ग्रन्थकार सबसे पहले ब्रह्मा का स्मरण करता है। नाट्यशास्त्र को देखिए! पुराणों के सन्दर्भ देखिए : **प्रथमं ब्राह्मणा स्मृतम्।** बाद में अन्य मत फले तो शिव-पार्वती संवाद, नारायण-नारद संवाद... और? प्राचीन ग्रन्थ में "तथा च ब्रह्मा प्रोक्तं" जैसे कई सन्दर्भ मिल जाते हैं। ग्रन्थकारों ने भी अपनी परम्पराको ब्रह्मा से ही आरंभ किया है-

आब्रह्मादिविनि:सृतमालोक्य ग्रन्थविस्तारं क्रमशः। (बृहत्संहिता प्रथम अध्याय)

ऐसा सुश्रुत ने भी कहा है। अनेक बार कहा है। ब्रह्मा को ही लिपि का प्रवर्तक भी माना गया। इसी कारण वह लिपि ब्राह्मी कही गई। इसका एक कारण ये भी था कि सृष्टिक्रम ब्रह्मा की देन है, ऐसे में वह लिपि भी सृष्टिक्रम से ही चलती है —

स्वयं स्वयंभुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं लिप्यादिनाम्।

चीन के विश्वकोश और नारदसंहिता में यह संकेत विद्यमान है।

पुष्कर : ब्राह्म क्षेत्र

ब्रह्मा के प्राचीन तीर्थ के रूप में पुष्कर को स्वीकारा गया है। ब्राह्मी लिपि का प्राचीनतम अभिलेख पुष्कर-अजमेर के पास स्थित बड़ली गाँव से मिला है। स्मृतियों, सूत्रों और पुराणों में पुष्कर का वर्णन आया है। पद्मपुराण तो इसी तीर्थ का अवदान है, हालांकि उसका स्वरूप प्रारम्भ में पाद्म अर्थात् ब्रह्मा का था। अब भी वह अंश सृष्टिकाण्ड के रूप में बचा हुआ है, शेष माहात्म्य भरे हैं और भगवद्गीता और भक्ति के प्रसारकों तक की महत्ता मिल जाती है।

ब्रह्मा की मूर्ति पुष्कर

पुष्कर को ब्राह्म क्षेत्र स्वीकारने के मूल में यह विचार भी था कि उस पूरे क्षेत्र में ज्ञान धारकों, मुनियों का पर्याप्त संचरण था और वहाँ सरस्वती की लुप्तधाराओं को पुन: देखा गया था। पुष्कर से आशय वह पौखरी भी है जो कमल पैदा करती है। संवत्सर के पूर्वदर्शन और वर्षफल के लिए गर्ग मुनि ने मयूरचित्रम् में पुष्कर क्षेत्र में कृतिकाओं के दर्शन के सम्बन्ध जो धारणा दी है, वह सिद्ध करती है कि वहाँ इस दिन समाज जुटता था। आज वह समाज मेले का रूप ले चुका है। "सावन या काती पूनम पे सुलह" कहावत के अनुसार हिसाब किताब का भी अवसर है यह पर्व! इस दिन कार्तिक स्नान करने वाले जलाशयों में दीपदान करते हैं और पितामह के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं, यह परम्पराबाद में पितरों के प्रति श्रद्धा की

सूचक हो गईं। यह गुरु नानक का प्रकाश पर्व भी है। हमारे यहाँ प्राचीन मान्यता का संरक्षण हमेशा ही नित नए रूप में होता रहा है, यह पर्व भी उससे भिन्न नहीं है।

पितामह की प्रतिमाएँ

पितामह ब्रह्मा की सृष्टि रचना के परिकर सहित स्थानक प्रतिमा अनेक स्थानों से मिली हैं। ब्रह्मा और सावित्री और उनके प्रतिहारों ही नहीं, शिव-पार्वती परिणय के स्वरूप कल्याणसुन्दर विग्रह (चित्र सं. 1) में पितामह को यज्ञ करते दिखाया जाता है। एलोरा से लेकर चित्तौड़ और ओसियाँ तक यह विग्रह बना है। बटेश्वर या विदिशा के आसपास से मिली एक खंडित प्रतिमा में पितामह त्रिमुख दिखाए गए हैं। (चित्र सं. 2) यह मूर्ति 10 वीं सदी की है। (ब्रिटिश संग्रहालय में संकलित) यह मूर्ति निश्चित ही किसी देवप्रासाद में पूजित रही है। मुख और उसकी रचना में श्मश्रु से शिरोभूषण तक के विधान पूरी तरह शास्त्रीय है। मुख पर थकावट नहीं, युवकोचित लावण्य क्या बताता है? यह कि ब्रह्मा का यह रूप पूजनीय था। भुजाओं में बुढ़ापा नहीं है, अंगद जैसे आभूषण सच में शोभाजनक है। ग्रीवा आभरण इतने सुन्दर है कि अनेक शब्द कम पड़ते हैं। इसमें एकावली और वलयवली में धागा और मनियों का अनूठा प्रयोग आठवीं सदी के आभूषणों से प्रेरित लगता है।

चित्र सं. 1 : कल्याणसुन्दर विग्रह

मूर्तिकला के मुख्य ग्रन्थ अपराजितपृच्छा (द्वितीय खण्ड) से ब्रह्मा की मूर्तियों की सुन्दर जानकारी मिलती है। यह स्मरणीय है कि पुराने ग्रन्थ में सबसे पहले प्रणाम ही प्रजापति को किया गया है : प्रजापतिं नत्वा / प्रणम्यादौ पितामहं... सुश्रुत, चरक से लेकर नाट्यशास्त्र तक ने प्रथम रूप में पितामह को प्रणाम किया है। महाकाव्यों और पुराणकारों ने भी यही किया। प्रत्येक ज्ञान को पितामह प्रोक्त कहा। स्मृतियों ने भी अनुसरण किया! यह वह दौर था जब विनायक-जैसे दोष की शान्ति के लिए पारिवारिक स्तर पर जोरदार उपाय किए जाते थे और फिर ब्रह्माजी को अन्य देवताओं की स्तुति करने वाला और मिथ्याभाषी तक! इतना लिखा गया कि फिर कभी वह सम्मान नहीं लौट सका। भारत में धार्मिक मान्यताओं के उतार-चढ़ाव के अपने इतिहास हैं लेकिन उनका प्रारूप कहाँ हैं?

सुन्दर संघाट प्रतिमा रूप

हरार्क-पितामह नाम से बनने वाली चौहान और चंदेलकालीन मूर्तियों में ब्रह्माजी का सौर, शिव और हरि के मत में सम्मिलन निश्चित ही रोचक है।

मूर्तिशास्त्र इस परम्पराकी सुरक्षित रखे हुए है। संयुक्त प्रतिमाएँ कैसी-कैसी बनी? शास्त्रों में जितने रूप वर्णित मिलते हैं, प्रायोगिक तौर पर उससे भी अधिक मिलते हैं। हर्ष पर्वत और खजुराहो में ऐसी सशक्त पहल हुई जिसमें प्रथमतया शिव, सूर्य और पितामह का स्वरूप मिलता है। ऐसी प्रतिमा शैव, सौर और ब्राह्म सम्प्रदायों की एकता को प्रदर्शित करती है। भारत में छठी सदी से ही ऐसी प्रतिमाएँ मिलती हैं। कलाकारों ने कला के माध्यम से ऐक्यता को

चित्र सं. 2

चित्र सं. 3

चित्र सं. 4

चित्र सं. 5 चित्र सं. 6 चित्र सं. 7

चित्र सं. 8

चित्र परिचय

2. ब्रह्मा, ब्रिटिश संग्रहालय
3. ब्रह्मा छत्तीसगढ़
4. ब्रह्मा मकरमंडी, मकर मंडी : निमाज राजस्थान में ब्रह्मा की प्रतिमा, चालुक्य काल, 11 वीं सदी। इस काल में त्रिपुरुषदेव मन्दिर खूब बने। यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश।
5. मल्लिकार्जुन मन्दिर, बसरलु, माण्ड्या जिला, कर्णाटक में ब्रह्मा एवं सरस्वती का अंकन
6. ब्रह्मा एवं सावित्री
7. ब्रह्मा कार्तिकेय का अभिषेक करते हुए, मथुरा संग्रहालय।
8. स्थानक ब्रह्मा सावित्री, सास बहू मन्दिर, उदयपुर, 10वीं सदी।

दर्शाने का प्रयास किया है। कला ही तो है जो एकता में अनेकता और अनेकता में एकता को दिखा सकती है। संघाट या संयुक्त मूर्तियों के मूल में यही विचार है।

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश

एलोरा गुफा संख्या- 27

खजुराहो की प्रतिमा छहभुजा है। एक ही काया में तीनों ही देवता है यानी तीन ही मुख है। इसमें नीचे के हाथों ब्रह्मा के आयुध लक्षण है, मध्य में शिव और ऊर्ध्व हाथों में सूर्य के आयुध निर्देश के अनुसार दिखाई देते हैं। इस प्रतिमा में प्रधान देवता सूर्य है, नीचे वाहन के रूप में अश्वरथ बना हुआ है। सूर्य ही कायाकार लगते हैं, परम्परित उदीच्य वेशभूषा में, अन्य लक्षण तो सब जानते ही हैं। मगर, एकात्मभाव की यह प्रतिमा ज्ञानात्मक देव, भस्मीदेव और रश्मिदेव के संयुक्त स्वरूप को दिखाने वाली है, कभी ऐसा रूप हरिहर हिरण्यगर्भ का भी बताया गया था। (देवतामूर्तिप्रकरण : श्रीकृष्ण 'जुगनू')

वैसे तो ब्रह्मा जी की प्रतिमाएँ बहुत कम पायी जाती हैं। ब्रह्माजी की यहअद्भुत चतुर्भुजी कलात्मक पाषाण प्रतिमा जो कि ग्राम डीपाडीह, जिला सरगुजा छत्तीसगढ़ से प्राप्त हुई है। (चित्र सं. 3) प्रतिमा 9वीं 10वीं शताब्दी की अनुमानित है। उक्त प्रतिमा में ब्रह्माजी के चारों सिरों के ऊपर पगड़ी बँधी हुई है तथा उनके पेट व सीने के मध्य मृगशीश अंकित है। दो हाथ भग्न हैं तथा एक हाथ में दंड है।

ब्रह्मा के मन्दिर तथा मूर्ति का स्थापत्य

ब्रह्मा के मन्दिरों का निर्माण गुप्तकाल में होने लगा था। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में अपने काल में पूजित देव प्रतिमाओं, इन्द्र, चैत्यतरु का उल्लेख किया है जिनके साथ क्रमश: शासक, सामन्त, सुकृत्य करने वालों का जुड़ाव था। ब्रह्मायतन के रूप में ब्रह्मा के मन्दिरों का उल्लेख भी वराहमिहिर ने किया है और बताया है कि ब्राह्मणों का इन मन्दिरों के साथ आत्मिक जुड़ाव था। इस विश्वास को उद्धृत किया है कि यदि कभी ब्रह्मायतन पर उल्का गिरे तो ब्राह्मणों के लिए उत्पीड़न की आशंका जाननी चाहिए :

ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद् गोमिनो गोष्ठे।। (बृहत्संहिता 33, 22)

इससे यह निश्चित है कि उस काल तक ब्रह्मा के मन्दिर बनने लगे थे। जिस हंस प्रसाद का वराहमिहिर ने उल्लेख किया है, वह हंस के आकार वाला, बारह हाथ विस्तार और एक मंजिला और एक श्रृंग वाला होता था, वह निश्चित ब्रह्मा के लिए बनाया जाता होगा।

हंसो हंसाकारो। (56, 26)

ब्रह्मा की मूर्ति के लक्षण भी वराहमिहिर ने दिए हैं

ब्रह्मा कमण्डलुकराश्चतुर्मुख: पंकजासनस्थश्च। (58, 41)

घूमली का देवायतन

यह मन्दिर उसी काल और कला से प्रेरित है जबकि मेवाड़, मालवा और गुजरात में 'त्रिपुरुषदेव' के नाम से मन्दिर बन रहे थे। ब्रह्मा को विष्णु और शिव की तरह आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त रही। शैव प्रधान मन्दिरों में भी परिक्रमा में तीनों दिशाओं की प्रधान ताकों में युगल देव विराजित किए गए :

शिव पार्वती, लक्ष्मी नारायण और ब्रह्मा सावित्री।

चौहान, सोलंकी और परमार शासन काल में मन्दिर स्थापत्य को सत्ता की स्थापना की प्रतिष्ठा और विजय तथा वैभव के सम्मान पूर्ण प्रदर्शन का प्रधान चिह्न माना गया। यह वही काल था जबकि पद्म-जैसे पुराण में ब्रह्मा सावित्री के प्रसंग का संस्कार हो रहा था।

घूमली (गुजरात) 12वीं सदी

त्रिपुरुष देव मन्दिर और उसका अभिलेख

राजस्थान के उदयपुर अंचल के प्राचीन गाँवों में से एक है घासा। कभी यहाँ की मंडी के भाव पूरे मेवाड़ क्षेत्र को मान्य रहे। यहाँ गडेला तालाब है और आसपास खरवड़ों का गुड़ा व मांगथला-जैसी बस्तियाँ भी।

खरवड़ों का गुड़ा में पूर्वाभिमुख एक ही आधार पर तीन मन्दिरों के गर्भगृह व उनके आगे लंबा मण्डप है। यह त्रिपुरुषदेव का मन्दिर है। इसमें क्रमश: विष्णु, रुद्र व ब्रह्मा की मूर्तियाँ थीं। तीनों के प्रदक्षिणा पथ में इन तीनों देवताओं की क्रमश: गरुड़, नन्दी और हंस पर सवार मूर्तियाँ हैं। सुन्दर पाषाण वाली ये मूर्तियाँ सोलंकी और गुहिल कला की उदाहरण प्रतीत होती हैं। आचार्य मेरुतुंग कृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' (1304 ई०) के सन्दर्भ से स्पष्ट होता है कि सल्तनत काल से पूर्व तक तीनों देवताओं के प्रासाद बन रहे थे।

घूमली (गुजरात) 12वीं सदी भव्य मन्दिर

यह मन्दिर मूलत: संवत् 1164 तद्नुसार 1107 ई० में बना। तब इधर दुलहराज का अधिकार था और उसकी पदवी या पहचान राजपुत्र की थी। तब त्रिविक्रम नामक सूत्रधार ने इस मन्दिर को बनाया। दुलहराज (पुत्र राम) ने सहयोग किया या उसकी निगरानी रही। विष्णुकुलिका के मण्डप के स्तम्भ पर लगा लेख इन बातों का संकेत देता है -

1. ओं। संवत् 1164 स्रावण वदि 11 गुरौ।।
2. राजपुत्र श्री दुलहराज (दुर्लभराज!) सुत राम... [देवत्रिपुरुष नित्यं]
3. सूत्रधार तिविक्रमस्य (प्रणमत)

यह मन्दिर लगभग 153 वर्ष तक सेवित रहा। वर्ष 1317 तद्नुसार 1260 ई० में जबकि महारावल तेजसिंह का समय था, महामात्य प्रसेनधर ने इस मन्दिर के प्रबन्ध के लिए अन्नदान का बंदोबस्त किया। विशेषकर जौ के मूडों

(एक टोकरी का तत्कालीन प्रमाण) का अनुदान तय हुआ। यह अनुदान गुड़ा, तालाब के खलिहान व माकड़थला वालों के लिये देय था, ऐसा अभिलेख से लगता है। यह अभिलेख विष्णु व रुद्र कुलिका के बीच दीवार के पत्थर पर 8 पंक्तियों में खुदा हुआ है। इसका संपादित पाठ इस प्रकार है -

1. ओं संवतु 1364 ब्रषे श्रावण वदि 5 रवौ अद्येह श्री मेदपाट भूमंडले समस्त रा-
2. जावली समलंकृत महाराजाधिराज श्री तेजसिंह देव कल्याण विजय राज्ये तं-
3. न्नियुक्त महमात्य महं प्रसेनधर प्रतिपत्तौ
4. गुडहा ग्राम वाग्डवारिये तलाव षलि-
5. हाणे मध्ये राशि मध्येत देव त्रिपु
6. रुष दत्त जव मूडी 0 1 तथा माकड़
7.थला ग्रामे जव मूडी 0 ।। अर्द्ध दात
8. व्यं...।

इस प्रकार, राजस्तान एवं गुजरात में ब्रह्मा के अनेक मन्दिर तथा मन्दिर शिल्प में ब्रह्मा की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ मिलतीं हैं। इनके अतिरिक्त चित्रकला में भी ब्रह्मा अंकित किये गये हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा की पूजा की वर्जना बहुत प्राचीन नहीं है, वह सम्भवतः 18-19वीं शती में फैली हो।

वायें से दायें-

1. ब्रह्मा : शैली : पहाड़ी, 17 वीं शताब्दी
2. ब्रह्मा : शैली : सिरोही, 17 वीं शताब्दी
3. ब्रह्मा : शैली चावंड मेवाड़, 1599 ई०
4. ब्रह्मा : शैली : बसोहली 17 वीं शताब्दी

नीचे

1. अमृतपान के चित्र में त्रिदेव में ब्रह्मा, गुलेर शैली : 1770-75.

डा. श्रीकृष्ण 'जुगनू' द्वारा प्रेषित, अपने विद्वान् मित्रों के द्वारा दी गयी सूचनाएँ। साभार

ब्रह्माजी मन्दिर, खेड़ब्रह्मा, गुजरात

लेखक- **श्री तरुण शुक्ल**

हमारे सनातन हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश (शिवजी) को त्रिदेव और मुख्य देवता माना गया है। ब्रह्माजी को सृष्टि के सर्जक, विष्णु को पालक और शिवजी को संहारक माना गया है। सनातन धर्म मे सब से पूजनीय त्रिदेव में से आज हम सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की बात करेंगे।

ब्रह्माजी की पूजा का प्रसार प्रचार विष्णु और शिव भगवान-जैसा व्यापक नही है। फिर भी गुजरात में ब्रह्माजी की पूजा अर्चना प्राचीन काल से होती आयी है। इस बात का सबूत गुजरात में आज भी ब्रह्माजी के विद्यमान मन्दिर और काफी जगह पायी जाती उनकी मूर्तियाँ है। गुजरात के बाहर राजस्थान के पुष्कर में ब्रह्माजी का मन्दिर है, देश में अन्यत्र भी हो सकते है, लेकिन फिलहाल मुझे ज्ञात नहीं है।

गायत्री एवं सावित्री के साथ ब्रह्मा, खेड़ब्रह्मा

गुजरात में खेडब्रह्मा में ब्रह्माजी का सबसे बड़ा पुराना मन्दिर है, जो आज भी विद्यमान है। वडनगर में शर्मिष्ठा तालाब के किनारे ब्रह्माजी और सावित्री का मन्दिर था, जो शायद आज नहीं है। पाटण के पास देलमाल के लिम्बज माता मन्दिर समूह में ब्रह्माजी के मन्दिर है। उत्तर गुजरात में थरा के पास कसरा गाँव में त्रिमूर्ति मन्दिर में ब्रह्माजी के स्वतन्त्र मन्दिर है। गुजरात के पास राजस्थान के सिरोही जिले में वसंतगढ़, कुसमा, हाथळ में ब्रह्माजी के स्वतन्त्र मन्दिर है। ब्रह्माजी को पुराणों में चतुर्मुख बताया गया है, लेकिन उनकी मूर्ति में तीन मुख दिखाए जाते है, चतुर्थ मुख का पीछे की ओर होना, कल्पना कर समझा जा सकता है। उनका वाहन हंस है। साथ में सावित्री और सरस्वती की मूर्ति होती है।

गुजरात में ब्रह्माजी के कुछ स्वतन्त्र मन्दिर तो है ही, साथ में अन्य देवी देवताओं के मन्दिर में काफी जगह परिवार देव के रूप में ब्रह्माजी की मूर्ति पायी जाती है।

ब्रह्माजी की एक मूर्ति महिसागर जिले के सरसवा उत्तर गाँव, जो कडाणा के पास है, वहाँ खुले में पूजी जाती है। मन्दिर अब नही है, अतः मान सकते है कि मन्दिर खण्डित होकर नष्ट हो गया होगा। इस लेख में इस मूर्ति का फोटो रक्खा है। इस मूर्ति का फोटो मुझे महिसागर धाम डेगामदा महिसागर के महंत श्री अरविन्द गिरीजी ने भेजा है।

अब खेदब्रह्मा की बात करे तो खेड़ब्रह्मा गाँव हिरण्याक्ष नदी के किनारे पर बसा हुआ है, वहाँ का ब्रह्मा मन्दिर ग्यारहवीं या बारहवीं सदी का है। मन्दिर के पास एक पुरातन वाव है। बड़े चौक में स्थित मन्दिर में ब्रह्माजी की करीब 6' की प्रतिमा कमलासन स्थित है। उनके हाथ में माला, कमण्डल, स्रुव, पुस्तक इत्यादि है। दोनों ओर सावित्री और सरस्वती है। मूर्ति के पास ब्रह्माजी का वाहन हंस है। ऐसा माना जाता है कि विधर्मी हमले में मूर्ति को क्षति हुई थी, जिसे अब ठीक किया गया है। मन्दिर का भी एक से ज्यादा बार जीर्णोद्धार किया गया है। मन्दिर के गूढ़ मण्डप की जाली देखने-जैसी है। एक समय पर कुछ विशेष अवसर पर मन्दिर के आसपास का पत्थर से मढ़ा चोक

पानी से भरा जाता था, उसमे घास से बनी हंस की प्रतिकृतियाँ तैरती हुई रखी जाती थी, जो कि एक अनुपम दृश्य खड़ा करती थी। खेडब्रह्मा में दर्शनार्थ ओर स्थानो में अम्बाजी मन्दिर और भृगु आश्रम मुख्य है।

वडनगर में चित्रेश्वरी माता मन्दिर की दीवार में ब्रह्माजी की 4' की मूर्ति है। जब कि खेरालु के मन्द्रोपुर गाँव के दुग्धेश्वर मन्दिर में भी ब्रह्माजी की मूर्ति दीवार में है। मोढेरा सूर्य मन्दिर में ब्रह्माजी की मूर्ति है। खंभात के पास नगरा गाँव में ब्रह्माजी की बड़ी प्रतिमा है, जिनके आसपास सावित्री और सरस्वती की मूर्ति है। ब्रह्माजी की धातु प्रतिमा अजमेर म्यूज़ियम में और पाटण के वायुदेव मन्दिर में है।

इस तरह ब्रह्माजी की अनेक प्रतिमा उत्तर गुजरात के संडेर, सुनक, रुहावी,गोराद, सिद्धपुर, वीरता, मोटप, धिनोज, कनोडा, कसरा, दाऊ और साबरकांठा के पंखनाथ, रोड़ा, ईडर, दावड, रायगढ़, टिंटोइ, प्रताप गढ़, आगिया में स्थित पुराने मन्दिर में है। सौराष्ट्र में प्रभास पाटण के सूर्य मन्दिर में, वढवान की माधा वाव में, और सेजकपुर के मन्दिर में भी ब्रह्माजी की मूर्ति उकेरी गई है। इससे ज्ञात होता है ब्रह्माजी की पूजा का प्रभाव पूरे गुजरात भर में था।

ब्रह्माजी का भव्य मन्दिर, खेड़ब्रह्मा, गुजरात

ब्रह्माजी की स्वतन्त्र प्रतिमाओं के साथ साथ आसनस्थ और युगल प्रतिमाएँ भी गुजरात मे पाई जाती है। आसनस्थ प्रतिमाओं में एक वडनगर के कीर्ति तोरण में है। जब कि युगल प्रतिमाओं में से एक कसरा के ब्रह्मा मन्दिर में है। आजकल ब्रह्माजी की पूजा करना आम चलन में नही है, फिर भी खेडब्रह्मा का ब्रह्मा मन्दिर किसी तरह अपना अस्तित्व बनाये हुए है। अतः जो भी मित्र अगर चाहे तो अम्बाजी जाते हुए या स्पेशियल खेडब्रह्मा जाकर अम्बाजी मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर और महर्षि भृगु आश्रम के दर्शन कर अपनी जिज्ञासा की संतुष्टि कर लाभान्वित हो सकता है। ईडर, खेदब्रह्मा और पोलो या अम्बाजी का एक या दो दिन का प्रवास अच्छे से इस जगहों को देखने मे सही रहेगा। तो इस कोरोना के कहर के बाद जरूर जाईयेगा।

पिहोवा के ब्रह्मा

लेखक- **श्री राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी**

ब्रह्म शब्द से ही ब्रह्मा शब्द बना है। ब्राह्मण शब्द, ब्रह्मराक्षस शब्द और ब्रह्मपुत्र नद और हरियाणा का ब्रह्मसरोवर आदि भी ब्रह्म शब्द से जुड़े हैं।

ब्रह्मा को विधाता अथवा सर्जन का देवता माना जाता है। उसके चार मुख बतलाये जाते हैं, और इन चारों मुखों की एक कहानी यह भी है कि ब्रह्मा शतरूपा को निहारते रहते थे। एक बार वह इनकी परिक्रमा कर रही थी, उसे चारों ओर से देखने के लिये इन्होंने चार मुख धारण कर लिये। किसी कथा में इनके पाँच मुखों का वर्णन है, जिसमें से एक मुख रुद्र देवता ने तोड़ दिया था। बहुत-सी कथाओं में एक यह भी कथा है कि इन्होंने चार मुखों से चार वेदों

का गायन किया था। अंगिरस्, पुलस्त्य, मरीचि, अत्रि, दक्ष, भृगु, वसिष्ठ आदि इसके मानसपुत्र माने गये हैं। सावित्री की ओर रति-भाव से आकृष्ट होने के कारण ब्रह्मा को अपूज्य माना गया है। ब्रह्मा और शिव के उपासकों के संघर्ष की भी अनेक कथाएँ कही-सुनी जाती हैं।

अनेक दैत्यों-दानवों को ब्रह्मा ने अजेय होने का वरदान दिया था। वे ब्रह्मा के उपासक थे। सरस्वती ब्रह्मा की मानस कन्या मानी जाती है। अजमेर में पुष्कर में ब्रह्मा का मन्दिर है।

कुरुक्षेत्र में ब्रह्मा का नाभिकमल तीर्थ है, पिहोवा में प्राचीन ब्रह्मामन्दिर तथा ब्रह्मयोनि तीर्थ है, चौमुहाँ गाँव में ब्रह्मा का मन्दिर है और कानपुर के पास भी एक ब्रह्म का मन्दिर बतलाया जाता है। ब्रह्मा के सन्दर्भ को लेकर शत-सहस्र कथायें पुराणों में हैं किन्तु ब्रह्मा को पूज्य नहीं माना गया।

पिहोबा में ब्रह्मा की प्राचीन प्रतिमा

ब्रह्मा मन्दिर खजुराहो

यह मन्दिर खजुराहो के पूर्ववर्ती मन्दिरों में से एक है। इस मन्दिर में ग्रेनाइट का उपयोग किया गया है। इसके साथ ही इसमें सेंड स्टोन का भी प्रयोग है। अन्य मन्दिरों में सिर्फ बलुई पत्थर का प्रयोग ही देखने को मिलता है। चित्र में आप देख सकते हैं मन्दिर की सीढ़ियों में ग्रेनाइट का उपयोग किया गया है।

इस प्रकार हम विविध काल में ब्रह्मा से सम्बन्धित स्थापत्य एवं मूर्तिकला देखते हैं। अतः यह कहना समुचित नहीं है कि ब्रह्मा की पूजा भारत में प्रतिष्ठित नहीं रही है।

खजुराहो में ब्रह्मा का मन्दिर

महाराज रणजीत सिंहजी की समाधि लाहौर,

लेखिका : **नाजिया वसीम**

भगवान शिव, गणेशजी तथा भगवान ब्रह्माजी की अद्भुत कलाकृतियाँ जो महाराज रणजीत सिंहजी की समाधि लाहौर, पाकिस्तान के मुख्य द्वार पर उकेरी गई हैं।

महाराज रणजीत सिंहजी की समाधि पर अंकित ब्रह्मा, लाहौर

ब्रह्म और ब्रह्मा

श्री अरुण कुमार उपाध्याय*

भारतीय चिन्तन की दृष्टि से ब्रह्मा आदिदेव हैं, वे अपने निर्गुण रूप में दर्शन शास्त्र में प्रतिपादित ब्रह्म हैं, तथा सगुण रूप में सृष्टिकर्ता, चतुर्मुख, सरस्वती के स्वामी, भाग्य विधाता ब्रह्मा हैं। प्राच्य विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् लेखक ने स्पष्ट किया है कि - "विश्व का मूल अव्यक्त चेतन तत्त्व ब्रह्म है। ब्रह्म का स्त्रष्टा रूप ब्रह्मा है। विष्णु के नाभि से कमल निकला और उस कमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ। विष्णु को पद्मनाभ और ब्रह्मा को पद्मज कहा गया है। आकाश का दिव्य स्त्रष्टा तत्त्व अमृत ब्रह्मा है, पृथ्वी पर सभ्यता का विकास करने वाले मर्त्य ब्रह्मा हैं।"

ब्रह्म और देव

लोगों की धारणा है कि वेद में बहुदेववाद था जो सुधार होते होते उपनिषद् काल में एकदेववाद हो गया। इन लोगों ने न वेद देखे, न उपनिषद्। अंग्रेजों से सुन लिया कि 1500 ई०पू. में वैदिक सभ्यता आरम्भ हुई तथा ऋक्, यजुः, साम, अथर्व के बाद धीरे धीरे उपनिषद् काल आया। विकास का अर्थ मान लिया कि बाइबिल की तरह बाद में सभी एक देव मानने लगे।

किसी भी स्थान या वस्तु का का प्राण (ऊर्जा, उसके कारण क्रिया या निर्माण) देव है। असुर भी प्राण है, पर वह तम या निष्क्रिय है, उससे कोई निर्माण नहीं होता। आकाश के भागों या वस्तुओं का जितने प्रकार से विभाजन करते हैं, उतने प्रकार के देव हैं। पूरे विश्व को एक रूप में देखने पर उसका प्राण एक ही देव है। उसे ब्रह्म कहते हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान का जो विश्व है, वह मूल स्रोत का 1 ही पाद (1/4) है। 1 पाद का विश्व पुरुष है, बिना निर्मित भाग (3/4) मिला कर वह पूरुष है। विश्व के अलग अलग रूप भी पुरुष हैं, उनका आधार उससे बड़ा होने के कारण अधि-पूरुष है। अन्य प्रकार से देखने पर ब्रह्म एक ही था, निर्माण के लिए उसने अपने 2 भाग किये— चेतन या कर्ता तत्त्व पुरुष तथा पदार्थ तत्त्व स्त्री हुआ (मातृ = matter)। बाइबिल में भी निर्माण का वर्णन ड्यूटेरोनौमी (द्वैत) कहा गया है। व्यक्ति के स्तर पर चेतन तत्त्व आत्मा तथा क्रिया तत्त्व जीव कहा जाता है।

ब्रह्म किसी दूर के 7वें आसमान में नहीं है, वह हर विन्दु पर है। विन्दु आकाश चित् है, उसमें मूल स्रोत आनन्द (रस या समरूप) है, दृश्य जगत् का भाग सत् है। इन तीनों का समन्वय सच्चिदानन्द (सत् + चित् + आनन्द) है।

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥[1]

1. मनुस्मृति, 1/32

*भारतीय पुलिस सेवा (अ. प्रा.)सी-/47, (हवाई अड्डा के निकट) पलासपल्ली, भुवनेश्वर।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्॥2॥

एतावानस्य महिमा-अतो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥3॥

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः॥ स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥4॥[2]

सो ऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किंच। तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्॥[3]

यद् वै तत् सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवाय लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।[4]

इस प्रकार ब्रह्म का स्रष्टा रूप ब्रह्मा है।

2. वेद में एकदेववाद—

एक इद् राजा जगतो बभूव= जगत् का एक ही राजा हुआ था।[5]; एक ईशान ओजसा[6]; भुवनस्य यस्पतिरेक एव नम्स्यो विक्ष्वीड्यः[7]; एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे[8]; एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति[9]; एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्[10]; एकत्वं अनुपश्यतः[11]; एकः सन् अभिभूयसः[12]; एको विश्वस्य भुवनस्य राजा[13] आदि पंक्तियाँ वेदों में एकेश्वरवाद के समर्थक हैं।

3. उपनिषद् में बहुदेववाद—

सामान्य अवधारणा के विपरीत देवा अग्रे तदब्रुवन्[14]; देवानामसि वह्नितमः[15]; देवानामेव महिमानं गत्वाऽऽदित्यस्य सायुज्यं गच्छति[16]; देवाः पितरो मनुष्याः[17]; देवा वा असुरा वा ते परा भविष्यन्ति[18]; देवेभ्यो लोकाः[19] आदि पंक्तियाँ उपनिषद् में बहुदेववाद के समर्थक हैं। अन्य प्रमाण भी इसके समर्थन में प्राप्त हैं-

कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच।

कतमे च ते त्रयश्च, त्री शता च, त्रयश्च त्री च सहस्रेति॥1॥

कतमे च ते त्रयस्त्रिंशदिति। अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति॥2॥[20]

अर्थात् याज्ञवल्क्य से पूछा गया कितने देवता हैं? उत्तर दिया— 3 हैं, 300 हैं, 3003 भी हैं॥1॥ देव 33 हैं— 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, इन्द्र, प्रजापति।

2 पुरुष सूक्त, वाज, यजु, अध्याय, 31
3 तैत्तिरीय उप, 2/6
4 तैत्तिरीय उप, 2/7
5 ऋक्, 10/123/3; वाज. यजु, 23/3, 25/11; तैत्तिरीय सं. 4/1/8/4, 7/5/16/1
6 ऋक्, 8/6/41
7 अथर्व, 2/2/1
8 तैत्तिरीय सं. 1/8/6/1
9 ऋक्, 1/164/46; अथर्व, 9/10/28
10 ऋक्, 8/58/2
11 वाज. यजु. 40/7
12 ऋक्, 8/17/15
13 ऋक्, 3/46/2, 6/36/4
14 चित्युपनिषद्, 13/2
15 प्रश्नोपनिषद्, 2/8
16 महानारायण उप. 18/1
17 बृहदारण्यक उप. 1/5/6
18 छान्दोग्य उप. 8/8/4
19 (कौषीतकि उपनिषद्, 3/3)
20 (बृहदारण्यक उपनिषद्, 3/9/1-2)

3339 देवों की गणना ग्रहण चक्र से सम्बन्धित है—

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चा सपर्यन्।।[21]

ब्रह्माण्ड पुराण में भी उल्लेख आया है—

सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य तु। प्रक्षीयन्ते पितृदेवैः पीयमानाः कलाः क्रमात्॥67॥
त्रयश्च त्रिंशतश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च। त्रयश्च त्रिसहस्राश्च देवाः सोमं पिबन्ति वै॥68॥
इत्येतैः पीयमानस्य कृष्णा वर्द्धति वै कलाः। क्षीयन्ति तस्माच्छुक्लाश्च कृष्णा आप्यायन्ति च॥69॥[22]

3339 तिथि के बाद ग्रहण चक्र पुनः आरम्भ होता है। इसका 2 गुणा राहु-सूर्य गति का अन्तर है। चन्द्रकक्षा पृथ्वी कक्षा को जिन 2 विन्दुओं पर काटती है, उनको राहु-केतु कहते हैं। इसका आधा 3339 तिथि है, जिसके बाद चन्द्र पुनः राहु या केतु स्थान (पृथ्वी कक्षा पर) आता है।

4. गायत्री मन्त्र और ब्रह्म—

ॐ के 3 पादों का विस्तार गायत्री के 3 पाद हैं। ये ब्रह्म के 3 वर्णनीय रूपों के विषय में हैं— स्रष्टा रूप ब्रह्मा, तेज या क्रिया रूप विष्णु, तथा ज्ञान रूप शिव।

ॐ भूर्भुवः स्वः/तत् सवितुर्वरेण्यं/भर्गो देवस्य धीमहि/धियो यो नः प्रचोदयात्।

सभी देव रूपों के भी 3 भाग इन 3 पादों से व्यक्त होते हैं—

(1) विष्णु— इक्षा या क्रियात्मक विचार, सूर्य, प्रत्येक व्यक्ति का मन। सृष्टि में हर व्यक्ति का मन या पिण्ड प्रायः स्वतन्त्र हैं, इसी कारण सबका स्वतन्त्र अस्तित्व है। इसका प्रतीक पीपल है जिसके पत्ते मनुष्य के मन जैसे डोलते हैं।

(2) शिव— परमेश्वर जिसके मन में प्रथम विचार उत्पन्न हुआ, तेज के विभिन्न क्षेत्र— रुद्र, शिव (शतरुद्र, सहस्र रुद्र, लक्ष रुद्र), शिवतर, शिवतम, सदाशिव, आदिगुरु रूप शिव। गुरु परम्परा का प्रतीक वट वृक्ष है जिसकी हवाई जड़ जमीन से लग कर वैसा ही वृक्ष बन जाती है। इसी प्रकार गुरु शिष्य को ज्ञान दे कर अपने जैसा मनुष्य बना देता है।

(3) ब्रह्मा— मूल रस रूप पदार्थ, 5 पर्वों के पिण्ड (स्वयम्भू, ब्रह्माण्ड, तारा, ग्रह, तथा ग्रहों के जीव), ज्ञान संहति के रूप में वेदत्रयी। त्रयी का अर्थ 4 वेद होता है 1 मूल (अथर्व) तथा 3 शाखा— ऋक्, यजु, साम।[23] इसका प्रतीक पलास वृक्ष है, जिसकी शाखा से 3 पत्ते निकलते हैं पर मूल भी बचा रहता है।

(4) हनुमान्— स्रष्टा रूप वृषाकपि है, जो पहले जैसी सृष्टि करता है सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।[24] तेज या गति रूप मारुति है। मन को प्रेरित करने वाला रूप मनोजव है।[25] इसका प्रतीक मूल वट की शाखाओं से बने वृक्ष हैं जिनको लोकभाषा में दुमदुमा (द्रुम से द्रुम) कहते हैं।

(5) देवी रूप में वैदिक भाषा में भारती, इला, सरस्वती है तथा पौराणिक भाषा में महाकाली, महालक्ष्मी, महा सरस्वती हैं (दुर्गा सप्तशती के 3 चरित्र)।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।।[26]

21 ऋक्, 3/9/9, 10/52/6
22 ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय 1/23
23 मुण्डकोपनिषद् 1/1/1-5
24 ऋग्वेद 10/190/3
25 योगसूत्र 3/49, ऋग्वेद 10/71/7-8
26 ऋक्, 1/13/9, 5/11/8

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे।।[27]

(6) गणेश रूप में प्रथम पाद उच्छिष्ट गणपति (1 पाद से विश्व बनने के बाद बचा मूल स्रोत) है, दृश्य जगत् के पिण्डों का समूह महा गणपति, तथा लोकों का गण या उसका मुख्य गणेश है। पुरुषसूक्त मे भी उल्लेख है कि,

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥3।।[28]

अथर्व, शौनकीय शाखा, 11/7 उच्छिष्ट सूक्त में भी

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः। उच्छिष्टे इन्द्राग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम्॥1॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्। आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः॥2॥
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ (21-27)[29]
गणानां त्वा गणपतिं हवामहे[30]

गणनात्मक ज्ञान या शब्दों में प्रकट ज्ञान गणेश है—

त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयस्त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयस्त्वं ---त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि।[31]

(7) इसी प्रकार कार्तिकेय (सुब्रह्म) सरस्वती, काली, लक्ष्मी के भी 3 रूप किये जा सकते हैं। कार्तिकेय (सुब्रह्म)— मूल सरिर् या सलिल रूप, तारा संहति को ब्रह्माण्ड रूप में देखना, कणों का समूह पिण्ड रूप में देखना।

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानं सरिरस्य मध्ये।[32]
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्र याहि दिव्यानि धाम।[33]

ब्रह्म से सुब्रह्म—

ॐ ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत् स्वयं त्वेकमेव तदैक्षत महद्वै यक्षं तदेकमेवास्मि हन्ताहं मदेव मन्मात्रं द्वितीयं देवं निर्मम इति तदभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत् तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य ललाटे स्नेहो यदार्द्र्यमाजायत तेनानन्दत् तमब्रवीत् महद्वै यक्षं सुवेदमविदामह इति। तद्यदब्रवीत् महद्वै यक्षं सुवेदमविदामह इति तस्मात् सुवेदोऽभवत्तं वा एतं सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते॥[34]

(8) सरस्वती— रस समुद्र का अनन्त विस्तार, ब्रह्माण्ड का सरस्वान् समुद्र, मस्तिष्क के भीतर समुद्र (मानसरोवर)। यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।[35]; मनो वै सरस्वान्।[36]; स्वर्गो लोकः सरस्वान्।[37]; वाक् सरस्वती।[38] इन पंक्तियों में सरस्वती का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

(9) काली— मूल अव्यक्त अज्ञात विश्व, व्यक्त विश्व में नित्य काल से परिवर्तन रूप जिसके बाद मूल रूप कभी वापस नहीं आता, काल का अनुभव या ज्ञान।

27 ऋक्, 1/188/8)
28 पुरुष सूक्त,वाजसनेयि यजु, अध्याय, 31/3
29 अथर्व, शौनक, 11/7 उच्छिष्ट सूक्त-
30 ऋक्, 2/23/1; वाज. सं. 23/19; तै. सं. 2/3/14/3; मै. सं. 166/11; काण्व. सं. 4/1
31 गणेश अथर्वशीर्ष, 4
32 वा० यजुर्वेद, 13/42
33 वा० यजुर्वेद, 15/52
34 गोपथ ब्राह्मण, पूर्व 1/1/1
35 तैत्तिरीय उपनिषद् 2/7
36 शतपथ ब्राह्मण, 7/5/1/31, 11/2/4/9
37 ताण्ड्य महाब्राह्मण, 16/5/15)
38 शतपथ ब्राह्मण, 7/5/1/31, 11/2/4/9, 12/9/1/13

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।
सा इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईषते प्रथमो नु देवः॥[39]

(10) लक्ष्मी– अव्यक्त से दृश्य जगत् की उत्पत्ति, आकाश में अलग अलग रूप या आकार के पिण्ड, निकट की दृश्य वतुओं का ज्ञान, दृश्य वाक् या लिपि।

ततो विराडजायत, विराजो अधिपूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥[40]

(विराट् = दृश्य जगत्)

यद्वै नास्ति तदलक्षणम्।[41]

तस्माद्यस्य सर्वतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते।[42]

देवलक्ष्मं वै त्र्यालिखितं तामुत्तर लक्ष्माण देवा उपादधत।[43]

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।[44]

5. पद्मज ब्रह्मा–

विश्व का मूल अव्यक्त चेतन तत्त्व ब्रह्म है। ब्रह्म का स्रष्टा रूप ब्रह्मा है। विष्णु के नाभि से कमल निकला और उस कमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ। विष्णु को पद्मनाभ और ब्रह्मा को पद्मज कहा गया है। आकाश का दिव्य स्रष्टा तत्त्व अमृत ब्रह्मा है, पृथ्वी पर सभ्यता का विकास करने वाले मर्त्य ब्रह्मा हैं।

आकाश में सृष्टि का निर्माण केन्द्र किसी भी विन्दु को मान सकते हैं। वहाँ से क्रिया तन्तुओं का समूह कमल का नाल है। विश्व के 3 आयाम के साथ क्रिया या गति (काल) चतुर्थ आयाम है। अतः तमिल में नाल का अर्थ 4 है। उस क्रिया की परिणति पद (अन्तिम चरण) है। उस पद्म से निर्मित सृष्टि पद्मज ब्रह्मा रूप है।

सृष्टि का मूल केन्द्र हिरण्यगर्भ या उल्ब (गर्भ-नाल) कहा है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥[45]

इसे उल्ब (गर्भनाल, मेरु भी कहा है। कूर्मपुराण में भी इसका उल्लेख आया है–

एक काल समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्। विशेषेभ्योऽण्डमभवत् बृहत् तदुदके शयम्॥36॥
तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धिः परमेष्ठिनः। प्राकृतेऽण्डे विवृत्तः स क्षेत्रज्ञो ब्रह्म-संज्ञितः॥37॥
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते। आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥38॥
यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात् परतः स्थितम्। हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दो-मूर्तिं सनातनम्॥39॥
मेरुरुल्बमभूत् तस्य जरायुश्चापि पर्वताः। गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यास परमात्मनः॥40॥[46]

हिरण्यगर्भ से क्रमशः क्रन्दसी (ब्रह्माण्ड) और रोदसी बने–

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्।

39 अथर्व, शौनक शाखा, 19/53/2
40 पुरुष सूक्त, 5
41 शतपथ ब्राह्मण, 7/2/1/7
42 शतपथ ब्राह्मण, 8/5/4/3
43 तैत्तिरीय सं. 5/2/8/3
44 ऋक्, 10/71/4
45 ऋक्, 10/121/
46 कूर्मपुराण (1/4

यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥3॥
यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वऽन्तरिक्षम्।
यस्यासौ सूरोविततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥[47]

सूर्य से तेज का प्रसार रुदन है। सूर्य-जैसे ब्रह्माण्ड के 100 अरब ताराओं का विसर्जन क्रन्दन है। अतः ब्रह्माण्ड का क्षेत्र क्रन्दसी तथा सौरमण्डल रोदसी हुआ।

आध्यात्मिक रूप में भी मनुष्य का जन्म गर्भ में उल्ब या नाल द्वारा होता है—

अग्नि-पुराण में इसी उल्ब या नाल को कमल का नाल माना गया है। वही आध्यात्मिक नाभिकमल का नाल भी है—

द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं शुद्धं विकसितं सितम्। नालमष्टाङ्गुलं तस्य नाभिकन्दसमुद्भवम्॥20॥
पद्मपत्राष्टकं ज्ञेयमणिमादिगुणाष्टकम्। कर्णिका केशरं नालं ज्ञानवैराग्यमुत्तमम्॥21॥
विष्णुधर्मश्च तत्कन्दमिति पद्मं विचिन्तयेत्। तद्धर्मज्ञान वैराग्यं शिवैश्वर्यमयं परम्॥22॥
ज्ञात्वा पद्मासनं सर्वं सर्वदुःखान्तमाप्नुयात्। तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धदीपशिखाकृतिम्॥23॥
अङ्गुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरम्। कदम्बगोलकाकारं तारं रूपमिवस्थितम्॥24॥
ध्यायेद् वा रश्मिजालेन दीप्यमानं समन्ततः। प्रधानं पुरुषातीतं स्थितं पद्मस्थमीश्वरम्॥25॥
ध्यायेज्जपेच्च सततमोङ्कारं परमक्षरम्। मनःस्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात्॥26॥
तद्भूतं निश्चलीभूतं लभेत् सूक्ष्मेऽपि संस्थितम्। नाभिकन्दे स्थितं नालं दशाङ्गुलसमायतम्[48]**॥27॥**[49]
नालेनाष्टदलं पद्मं द्वादशाङ्गुलविस्तृतम्। सकर्णिके केसराले सूर्य्यसोमाग्निमण्डलम्॥28॥
अग्निमण्डलमध्यस्थः शङ्खचक्रगदाधरः। पद्मी चतुर्भुजो विष्णुरथ वाष्टभुजो हरिः॥29॥

हमारे लिए विष्णु का प्रत्यक्ष रूप सूर्य है, जिसे जगत् की आत्मा कहा गया है।[50] उसके आकर्षण रूपी नाल से बन्धी पृथ्वी हमारा आधार या पद होने से पद्म है। इस पद्म पर सभ्यता का केन्द्र मनुष्य ब्रह्मा है। सूर्य अमृत और मर्त्य विश्व के मध्य में है—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥[51]

कृष्णेन = कृष्ण के द्वारा। आकर्षण अर्थ तो स्पष्ट है। काला रंग भी अर्थ होता है, इस अर्थ में कृष्ण विवर है। आ (कृष्णेन) = कृष्ण के सभी तरफ। रजसा वर्तमानो— लोक वर्तमान या स्थित है। इमे वै लोका रजांसि।[52]

मूल केन्द्र की दिशा को ही मूल नक्षत्र कहा जाता है। इसका पूरा नाम मूल बर्हणी है, अर्थात् इसी मूल से बढ़ा है।

47 ऋक् 10/121/4-6; अथर्व 4/2/3-5, 7
48 द्रष्टव्य- पुरुषसूक्त- स भूमिं विश्वतो वृत्त्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम्।
49 अग्नि-पुराण, अध्याय 374
50 ऋक्, 1/115/1; वाज. यजु, 7/42
51 ऋक्, 1/35/2; वाज. सं. 33/43, 34/31; तैत्तिरीय सं. 3/4/11/2; मैत्रायणी सं. 4/12/6, 196/16,
52 वाज. सं. 11/6; शतपथ ब्राह्मण, 6/3/1/18

बर्हणी का अर्थ बढ़नी या झाड़ू भी करते हैं। अतः कहते हैं कि मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाला झाड़ू की तरह अपने परिवार का सफाया कर देता है। मूलमेषामवृक्षामेति। तन्मूलबर्हणी।[53] निर्ऋत्यै मूलबर्हणी।[54] ऋत का अर्थ सत् का विस्तार है, निर्ऋत का अर्थ शून्य है अर्थात् कुछ नहीं दीखता है।

निवेशयन् अमृतं मर्त्यं च— इस लोक में अमृत तथ मर्त्य दोनों है। सौर मण्डल स्थित तीनों लोक मर्त्य या पुराण भाषा में कृतक है। उससे बड़े ब्रह्माण्ड तथ बड़े तप और सत्य लोक अमृत या मकृतक हैं (अपेक्षाकृत अधिक स्थायी) हैं। ब्रह्माण्ड के भीतर मर्त्य भाग केवल जनः लोक (ब्रह्माण्ड विस्तार) है।

त्रैलोक्यमेतत् कृतकं मैत्रेय परिपठ्यते। जनस्तपस्तथ सत्यमिति चाकृतकं त्रयम्॥[55]

हिरण्ययेन = तेजयुक्त, सविता = सूर्य, रथेन = सौर मण्डल के शरीर या विस्तार से। इसकी परिभाषा तेज के अनुसार ही है। जहाँ तक सूर्य का तेज अधिक (ब्रह्माण्ड तुलना में) है, वहाँ तक सूर्य की वाक् (क्षेत्र) है और उसकी माप 30 धाम है।

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः॥[56]

6. मनुष्य ब्रह्मा—

महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय 348 में मनुष्य रूप में 7 ब्रह्मा का वर्णन है—

(1) मुख्य (नारायण के मुख से)— वैखानस को उपदेश,

(2) नेत्र से— सोम को उपदेश, उनसे रुद्र, वालखिल्यों को,

(3) वाणी से— इसे महाभारत के शान्ति पर्व में वाणी का पुत्र अपान्तरतमा कहा है[57], उनके माता पिता के लिये वाणी— हिरण्यगर्भाय नमः यज्ञ में पाठ होता है। उनसे त्रिसुपर्ण ऋषि को उपदेश। गर्ग-संहिता[58] में अपान्तरतमा द्वारा गौतम-पुत्र मेधावी को पर्वत बनने का शाप[59], में अपान्तरतमा ऋषि द्वारा हरिण उपद्वीप (मलगासी द्वीप, मृगव्याध या मृगतस्कर = मगाडास्कर) में तप, अपान्तरतमा आश्रम में गरुड के पक्ष का पतन, में अपान्तरतमा शकुनि द्वारा शम्बर आदि दैत्यों को मोक्ष उपाय रूप में भक्ति के प्रकारों का कथन[60], ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में अपान्तरतमा ऋषि का ब्रह्मा के गले से प्रादुर्भाव[61], ब्रह्मा-पुत्र[62], अपान्तरतमा नाम की निरुक्ति[63], तैत्तिरीय आरण्यक (8/9) सायण भाष्य में अपान्तरतमा का जन्मान्तर में कृष्ण द्वैपायन व्यास बनना।)

(4) आदि कृतयुग में (श्लोक 34) कर्ण से ब्रह्मा की उत्पत्ति— आरण्यक, रहस्य. और संग्रह सहित वेद क्रम से स्वारोचिष मनु, शंखपद, दिक्पाल, सुवर्णाभ को उपदेश।

(5) आदि कृतयुग में (श्लोक 41) नासिका से ब्रह्मा की उत्पत्ति— क्रम से वीरण, रैभ्य मुनि, दिक्पाल कुक्षि को उपदेश।

53 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/5/2/8

54 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/5/1/4, 3/1/2/3)

55 विष्णु पुराण, 2/7/19

56 ऋक् 10/189/3; साम 632, 1378; अथर्व 6/31/3, 20/48/6; वा. यजु 3/8; तैत्तिरीय सं 1/5/3/1

57 महाभारत, शान्ति पर्व 349/49

58 गर्ग संहिता (6/14/8

59 गर्ग संहिता, 7/40/35

60 गर्ग संहिता, 7/42/23

61 ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, 1/8/27

62 उपरिवत् 1/12/4

63 उपरिवत्, 1/22/17

(6) अण्डज ब्रह्मा (शान्ति पर्व 349/17 में भी)— से बर्हिषद् मुनि, ज्येष्ठसामव्रती हरि, राजा अविकम्पन को उपदेश।

(7) पद्मनाभ ब्रह्मा से दक्ष, विवस्वान्, वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु को उपदेश। यह सम्भवतः मणिपुर के निकट हिमालय के पूर्व भाग में थे। उनके नाम पर त्रिविष्टप् का पूर्व भाग ब्रह्म विटप (ब्रह्मपुत्र नदी का स्रोत क्षेत्र), ब्रह्मपुत्र, ब्रह्म देश (बर्मा, अभी म्याम्मार = महा + अमर) हैं।

शंकराचार्य ने मठाम्नाय सेतु में कृतयुग में ब्रह्मा, त्रेता में वसिष्ठ, द्वापर में व्यास तथा कलि में शंकराचार्य को जगद् गुरु कहा है। इससे स्पष्ट है कि आज के शंकराचार्य परम्परा की तरह, ब्रह्मा, वसिष्ठ, परशुराम आदि की परम्परा है।

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषिसत्तमः (वसिष्ठ)।द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम्॥73॥

इनमें कई वर्णन लाक्षणिक हैं। शिवपुराण, कोटिरुद्र संहिता में ज्ञान स्रोत के रूप में शिव को ब्रह्मा, वसिष्ठ, व्यास कहा गया है (अध्याय 35-36, नामसंख्या 50, 498, 982)। सभी व्यासों को शिव अवतार कहा गया है। पर कृष्ण द्वैपायन व्यास की स्तुति में उनको ब्रह्मा, विष्णु, शिव कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त 3 अन्य ब्रह्मा थे—

(1) स्वायम्भुव मनु (29102 ईपू)— इनके 26,000 वर्ष बाद बादरायण व्यास के समय 3102 ईपू. में कलियुग का आरम्भ हुआ।[64] वेद तथा अन्य शास्त्रों का आरम्भ इनसे हुआ। ये आद्य त्रेता में हुए थे।[65]

(2) पुष्कर ब्रह्मा— इनका स्थान पुष्कर द्वीप या दक्षिण अमेरिका कहा है।[66] इसे मिला कर 3 पुष्कर का उल्लेख है।[67] उज्जैन से 12 अंश पश्चिम का पुष्कर[68], इन्द्रप्रस्थ पुष्कर- अजमेर, आबू पर्वत अदि [69]

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः॥13॥
तमुत्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्॥14॥[70]

न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्। तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः॥[71]
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत् तेन स स्मृतः।।[72]
एवं पुष्करमध्येन यदा याति दिवाकरः। त्रिंशद् भागन्तु मेदिन्यास्तदा मौहूर्त्तिकी गतिः॥[73]
पृथूदके गयाशीर्षे नैमिषे पुष्करत्रये॥[74]

स्कन्द पुराण[75] के अनुसार 3 पुष्कर हैं-

1. ज्येष्ठ- पुष्कर द्वीप में न्यग्रोध नामक स्थान के निकट।
2. मध्य- उज्जैन के 12 अंश पश्चिम उजबेकिस्तान का बुखारा।
3. कनीयक- अजयमेरु (अजमेर) का पुष्कर जहाँ सरस्वती धारा बहती थी।

(3) कश्यप (17500 ईपू.)- इनके 10 युग = 3600 वर्ष बाद 13902 ईपू. में वैवस्वत मनु काल था। उनके बाद सत्य, त्रेता, द्वापर 3102ई०पू. में पूर्ण हुए। कश्यप के समय अदिति नक्षत्र पुनर्वसु से वर्ष आरम्भ होता था।

64 ब्रह्माण्ड पुराण,1/2/29/19; मत्स्य पुराण, 273/77-78
65 वायु पुराण, 31/3
66 मत्स्य पुराण, 123/39; विष्णु पुराण, 2/8/8/5; ऋक्, 6/16/13
67 पद्म पुराण, 1/15/151, 1/19-20; अग्नि पुराण, 211/8; स्कन्द पुराण, 6/45, 179
68 विष्णु पुराण, 2/8/28
69 पद्म पुराण, 1/20
70 ऋक्, 6/16
71 विष्णु पुराण, 2/2/85; ब्रह्माण्ड पुराण, 8/8/7
72 मत्स्य पुराण, 123/39
73 विष्णु पुराण, 2/8/26
74 स्कन्द पुराण, 6/4/37
75 स्कन्द पुराण, 6/179/54

अदितिर्जातम्, अदितिर्जनित्वम्।[76] अदिति को कश्यप की पत्नी कहा गया है। कश्यप को स्रष्टा, प्रजापति आदि कहा गया है-

कश्यपः त्वां असृजत।[77] कश्यपोद्वर्धयन् गिरः।[78]

ब्रह्माण्ड पुराण[79] में 6 काश्यप ऋषियों को मन्त्रकृत् कहा गया है। इसी पुराण में इन्हें प्रजापति कहा गया है।[80]

7. ब्रह्मा का पुत्री सरस्वती से सम्बन्ध-

एक ब्राह्मण ग्रन्थों तथा पुराण में एक कथा है कि ब्रह्मा का अपनी पुत्री सरस्वती से अवैध सम्बन्ध था जिससे वे निन्दित हुए। किन्तु यह मनुष्य रूपी ब्रह्मा या सरस्वती के विषय में नहीं है, आकाश में सृष्टि के तत्त्वों का वर्णन है जो मूल उदाहरणों से स्पष्ट है। पण्डित मधुसूदन ओझा तथा उनके शिष्य पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने ऐसी कथाओं को असद् आख्यान कहा है। जैसे ग्लोब दिखा कर या कागज पर वृत्त बनाकर पृथ्वी के बारे में समझाते हैं। पृथ्वी बहुत बड़ी है किन्तु आकार के विषय में अनुमान करने के लिए यह आवश्यक है। एक अन्य कारण है कि सृष्टि आकाश में हुई, किन्तु वस्तुओं का नाम करण पृथ्वी पर हुआ। भौतिक शब्दों के अर्थ का विस्तार 7 संस्थाओं में हुआ— आध्यात्मिक (शरीर के भीतर – योग, तन्त्र, आयुर्वेद), आधि-दैविक (आधि-ज्योतिष, प्राण शक्ति), आधि-भौतिक (पृथ्वी पर भौगोलिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, व्यावसायिक, औद्योगिक शब्द)। इनको 7 संस्था कहा गया है। अतः आकाश के तत्त्वों के वही नाम दिए गये, जो पृथ्वी की वस्तुओं के हैं। पृथ्वी पर गङ्गा नाम की नदियाँ हैं, पर आकाशगङ्गा ब्रह्माण्ड के भीतर एक चक्र है जो प्रायः 1 मन्वन्तर में 1 परिक्रमा करता है। दोनों को एक मानने से भ्रम होता है। मनुष्य रूप में सरस्वती किसी स्त्री का नाम हो सकता है, पर विद्या रूप सरस्वती सबके भीतर अव्यक्त है। आकाश की सरस्वती उनसे भिन्न है।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥[81]
ऋषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम्। अनादि-निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥
नाना रूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्त्तनम्। वेद शब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः॥[82]
यास्सप्त संस्था या एवैतास्सप्त होत्राः प्राचीर्वषट् कुर्वन्ति ता एव ताः।[83]
छन्दांसि वाऽअस्य सप्त धाम प्रियाणि । सप्त योनीरिति चितिरेतदाह।[84]
अध्यात्ममधिभूतमधिदैवं च (तत्त्व समास, 7)
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम। अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥1॥
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्म उच्यते। भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥3॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषस्याधिदैवतम्।[85]

ज्ञान की उत्पत्ति द्रविड़ में हुई, किन्तु उसकी वृद्धि (अर्थ का विस्तार) कर्णाटक में हुई। श्रुति-ज्ञान कर्ण आदि ज्ञानेन्द्रियों से आता है, अतः उसकी वृद्धि का स्थान कर्णाटक हुआ। अप् या द्रव जैसे ज्ञान का उद्भव स्थान द्रविड हुआ।

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ। ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ॥45॥

76 शान्ति पाठ, ऋक्, 1/189/10
77 अथर्व, 8/5/14
78 ऋक्, 9/114/2
79 ब्रह्माण्ड पुराण, 1/2/32/112
80 ब्रह्माण्ड पुराण,2/3/1/53
81 मनुस्मृति, 1/21
82 महाभारत, शान्ति पर्व, 232/24-26
83 जैमिनीय ब्राह्मण उपनिषद् 1/21/4
84 शतपथ ब्राह्मण, 9/2/3/44; वाज. यजु,17/79
85 गीता, अध्याय 8

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता। क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥48॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड श्रीमद्भागवत माहात्म्य, भक्ति-नारद समागम नाम प्रथमोऽध्यायः)

8. ऐतरेय ब्राह्मण आख्यान—

नीचे अनुवाद सहित मूल उद्धरण दिया है, जिससे स्पष्ट है कि यह आकाश के नक्षत्रों के विषय में है।

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्-दिवमित्यन्ये आहुः, उषसमित्यन्ये। तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्। तं देवा अपश्यन्— अकृतं वै प्रजापतिः करोति, इति॥

ते तमैच्छन्— य एनमारिष्यति। एतमन्योऽन्यस्मिन्नविन्दन्। तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसन्, ता एकधा समभरन्। ताः सम्भृता एष देवोऽभवत्, तदस्यैतद् भूतवन्नाम— इति॥

तं देवा अब्रुवन्— अयं वै प्रजापतिरकृतमकः, इम विध्येति। स तथेत्यब्रवीत्। स वै वो वरं वृणा इति, वृणीष्वेति। स एतमेव वरमवृणीत— पशूनामाधिपत्यम्। तदस्यैतत् पशुमन्नाम। इति॥ तमभ्यायत्याविध्यत्। स विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्। तमेतं मृग इत्याच्क्षते। य उ एव मृगव्याधः स उ एव सः। या रोहित्, सा रोहिणी। या उ एवेषुस्त्रिकाण्डा, सा एवेषुस्त्रिकाण्डा— इति॥[86]

अर्थात् प्रजापति ने अपनी लड़की को (देखकर भार्या के रूप में सींचा। इसे कुछ ऋषि द्युलोक की देवता कहते हैं, और कुछ अन्य उषा देवता कहते हैं। वे प्रजापति हरिण होकर रोहित (हिरणी या ऋतुमती) हुई (दुहिता) के पास गये। उस (दुहितृगामी प्रजापति) को देवों ने देखा और परस्पर कहा— 'ओह, प्रजापति अकृत-कर्म (निषिद्ध आचरण) करता है'— ऐसा विचार कर उन्होंने (ऐसे पुरुष को) खोजा जो इस (प्रजापति) को मारने में समर्थ हो। किन्तु अपने लोगों के बीच में किसी को भी नहीं प्राप्त किया। तब उनमें जो घोरतम (उग्र) शरीरांश था, उसे एक जगह एकत्र किया। वह सब एकीकृत हो कर यह देव (रुद्र) उत्पन्न हुए। इसीलिए उस (रुद्र) का भूत शब्द से युक्त (भूतपति) नाम हुआ।

उन (रुद्र) से देवों ने कहा— 'इस प्रजापति ने अकृत-कर्म किया है, अतः इसे विद्ध कर दो।' उन (रुद्र) ने वैसा ही किया। तब उन (रुद्र) ने कहा— मैं आप लोगों से एक वर का वरण करता हूँ। उन्होंने कहा— वरण कर। उन (रुद्र) ने यही वर मांगा कि मैं पशुओं का आधिपत्य प्राप्त करूँ। इसीलिए रुद्र का नाम पशु शब्द से युक्त (पशुपति) हुआ।

उस (प्रजापति) को (रुद्र ने बाण युक्त) धनुष को खींच कर मारा। विद्ध हुआ वह प्रजापति ऊपर को उछला। उस (आकाश में ऊपर उछले हुए प्रजापति) को अभिज्ञ जन (रोहिणी और आर्द्रा नक्षत्र के मध्य अवस्थित) मृगशिरा नक्षत्र कहते हैं। जिस (मृग-घाती रुद्र) ने उसको मारा, वह मृगव्याध हुआ। जो (दुहिता) लाल वर्ण की (हिरणी) थी, वही आकाश में रोहिणी हुई। (रुद्र का) जो बाण तीन धारों वाला था, वह तीन नोकों वाला भाग (इषु— त्रिकाण्डा) हो गया।

शतपथ ब्राह्मण (2/1/2/6-10) में विस्तार से वर्णन है। वहाँ नक्षत्र के अनुसार कृषि कार्य का भी उल्लेख है।

***

86 ऐतरेय ब्राह्मण, 13/9

ब्रह्मस्वरूप वरदान विमर्श

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य*

ब्रह्मा के विवेचन की अनेक दृष्टियाँ हो सकतीं हैं। वे देव-प्रमुख हैं, सृष्टिकर्ता हैं। वे सभी को समान दृष्टि से देखते हैं। ब्रह्मा उपास्य हैं अतः उनके उपासक भी हमें मिलते हैं- मुष्य ही नहीं, देव, दानव, दैत्य- सवके वे उपास्य हैं। दानवादि भी उनसे वरदान पाकर स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानने लगते हैं, किन्तु उनमें विवेक मर जाता है, अतः वे नाश को प्राप्त होते हैं। निर्गुण रूप में जो ब्रह्म हैं वे भक्तों के कल्याण के लिए सगुण रूप में ब्रह्मा कहलाते हैं। यह उनका लीलावतार है। विशिष्टाद्वैत दर्शन की दृष्टि में ऐसा ही विवेचन यहाँ ब्रह्मा के सन्दर्भ में हुआ है।

सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं चतुर्मुखाय ब्रह्मणे।
वेदज्ञानप्रकाशाय ज्ञानधाम्ने नमो नमः।।

नामरूपभेदातीत त्रिगुणातीत, स्वयंसंवेद्य, स्वतन्त्र स्वयम्भू, सर्वश्रेष्ठ, निर्गुण, निराकार कार्यपरिणाम में सगुण साकार, सर्वव्यापी, अनन्त, सच्चिदानन्द अखिलैश्वर्य सम्पन्न परब्रह्म एकमेवाद्वितीय हैं। उपनिषद् ज्ञान संचरण में सगुण होकर भी निर्गुण तथा साकार दोनों होकर भी निराकार हैं। वे अपाणिपाद होकर भी संचरणशील, सर्वेन्द्रिय गुणाभास होने पर भी सर्वेन्द्रियविवर्जित हैं। निर्विकल्पक होकर भी सविकल्पक हैं। अवाङ्मनसगोचर भी हैं बुद्धिगम्य भी हैं। इस प्रकार परस्पर विरोधी गुणों का एकाधिष्ठान अलौकिकत्व का संधारण तथा संचारक हैं। जो अवर्णनीय है। कार्य-परिधि में व्यावहारिक अनित्य शब्दों से जिसका निर्वचन संभव नहीं है। फलतः नेति नेति अनिर्वचनीय है। यही परब्रह्म भक्तप्रेम परिपूर्ति में स्वतन्त्रेच्छा से सर्वबन्धनरहित होकर लीला संचरण में त्रिगुणात्मक सृष्टिप्रवाह में नानाविधिसम्पन्न रजोगुणप्रेरित सगुण-साकार हो हिरण्यगर्भ ब्रह्मा के रूप में अवतरित होते हैं-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।[1]

सृष्टि का विस्तार होने पर उसका रक्षण-पालन अनिवार्य है। एतदर्थ वही परब्रह्म सत्त्वगुणप्रधान विष्णुरूप से सृष्टि का पालन-पोषण करते हैं। अन्त में प्राणिमात्र की मंगलकामना से अभिप्रेरित तमोगुणप्रधान भगवान् शिव अवतरित होकर सृष्टि का संहार करते हैं। संहार का अर्थ यहाँ विनाश या क्षय कदापि नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टिक्रम की एक विधि-बाध्यता है, जिस परिधि में लीला का पर्य्यवसान वरण होता है, जो कर्मशीलता का स्थूल महाविश्राम है। सूक्ष्मरूप से परब्रह्म की जगत् कल्याणकर्मशीलता अनादि-अबाधित संचरित है।

1 यजुर्वेद, 23.1.

*व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

श्रीमद्भागवत के अनुसार वही परब्रह्म-वाच्य-वाचकोभय रूप में सन्निहित होते हुए विभिन्न नाम-रूप-क्रिया को धारण करते हैं-

स वाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक्। नामरूपक्रियां धत्ते सकर्मकाकर्मकः परः।।[2]

इसी प्रकार पुनः भागवत में भगवान् स्वयं कहते हैं-

श्रीभगवानुवाच —

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्। आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषणः॥50॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज। सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥51॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि। ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥52॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्। पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥53॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्। सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिं अधिगच्छति॥54॥[3]

अर्थात् मैं ही जगत् का आदि परम कारण शिव-ब्रह्मा हूँ। स्वयं प्रकाश हूँ तथा सर्वोपरि शून्य हूँ। विष्णु-शंकर-ब्रह्मा में अभेदबुद्ध रखनेवाला ही शान्ति को प्राप्त करता है।

इसी तरह 'विष्णुपुराण' के अंश 2, अध्याय 2 के प्रथम श्लोक में कहा गया है-

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैवरूपरूपाय विष्णवे सर्वविष्णवे।।
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्वस्थित्यन्तकारिणे।।[4]

जो उत्पत्ति पालन, संहार क्रिया-प्रवर्तनार्थ ब्रह्मा विष्णु एवं शिव के रूप में अवतरित होते हैं ऐसे सर्वविजयी वासुदेव विष्णु को नमस्कार है।

इस तरह परब्रह्मपरिदि में ब्रह्मा का निर्वचन विष्णुपुराण में समुपलब्ध है। आश्चर्य है कि परात्पर ब्रह्म का ही सगुण साकार जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं, तब इनका विष्णु, शिव की तरह पूज्यस्थान न देना स्वबौद्धिक काल्पनिक अज्ञातासंचार ही है।

विशेष रूप से विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में नारायण के समतुल्य अन्य देवों के साथ परावर भेद विशेष दुःखद है।

18 पुराणों का शाक्त, वैष्णव, शैव परिचर्चा में तीन भाग वर्णित हैं। वैष्णवपुराणों में श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण का आदरणीय स्थान है। इन दोनों पुराणों के विषय-निर्वचन से सुस्पष्ट परब्रह्म का रजोगुमात्मक अवतार ब्रह्मा हैं। तब ब्रह्मा का पूज्य स्थान न देकर उससे भी अधिक कथाप्रवचन में "अज्ञानी बुड्ढा 60 वर्ष में सठिया गया" इन शब्दों से ब्रह्मा परिचय अग्रसर करना साक्षात् वेदप्रतिपादित सिद्धान्तों का सीधा उल्लंघन है। कैसे ये प्रामाणिक आचार्यों की पंक्ति का पात्र बन सकते हैं। विशेषकर रावण तथा हिरण्यकशिपु की कथा में रावण तथा हिरण्यकशिपु के अनुकूल वरदान देने में तथाकथित वैष्णवाचार्य ब्रह्मा को साधारण जन से भी अधिक बुद्धिहीन कहने में संकोच नहीं करते हैं। आश्चर्य है इस दुर्बुद्धि पर। स्वयं स्वीकृत भागवत-विष्णुपुराण का आदर करें मैं स्वयं कथा में सुनकर अति व्यथित हुआ हूँ। आज लेख लिखने के क्रम में अध्ययनानुभूति में सुस्पष्ट परब्रह्म से अभिन्न ब्रह्माजी का हृत्स्थल में परब्रह्मपूज्यस्थान अधिष्ठित हुआ, जिससे आत्ममुदिता का संचार हुआ।

राक्षसों को उनके अनुकूल वरदान देना कर्मवाद का सुचित आदर है। कर्म निश्चित रूप से फलानुगामी होते हैं यह सुस्पष्ट दार्शनिक व्यावहारिक सिद्धान्त है। परन्तु कर्ता के भावानुसार फल सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक

2 भागवत, 2.1.36. 3 भागवत, 4.7.50-54 4 विष्णुपुराण,2.2.1-2

होते हैं। तामसिक फल से निश्चित सर्वथा विनाश होता है। क्या रावण, हिरण्यकशिपु बच पाये?

यहाँ पर विलक्षण ध्यातव्य, प्रष्टव्य उपासना तथ्य का आभ्यन्तरिक निर्धारण है।

इष्टदेव का सात्त्विकोपासना में कामना का संचार नहीं होना चाहिए, न ही उन पर विशेषाधिकार होना चाहिए। अनादिकर्मवासना में कौन पूर्वजन्मकृत महापाप फलबाधक है यह तो कालातीत सर्वान्तयामी परब्रह्म परमात्मा ही जानते हैं। सर्वविधसीमाबद्ध जीव की दृष्टि सन्निकर्ष स्थूलसापेक्ष होती है। राक्षसों के इतिहास में सबने विशेष बाध्यकर इष्टदेव से मनोनुकूल वरदान प्राप्त किया। यही तामसी पूजा है। इष्टदेव पर श्रद्धा, विश्वास के साथ भक्ति का संचार सात्त्विक पूजा है। इष्टदेव से कुछ भी छुपा हुआ नहीं है। वे सर्वथा सर्वदा सर्वहितकर हैं। हाँ, भक्तों के लिए उनका कृपावतार होता है। तथापि, वे मुझसे उन्हें मेरी हितता का अधिक ज्ञान है। क्या सुभ होगा तथा क्या अशुभ होगा वे भलीभाँति जानते हैं। इष्टदेव पर महाविश्वास के साथ भक्ति संचरण की आवश्यकता है। इसे राक्षसों ने स्वीकार नहीं किया। यही राक्षसी वृत्ति है जिससे तात्कालिक अनुकूल लरदान प्राप्त करने पर भी अन्त में महाविनाश हुआ।

ब्रह्मा-सरस्वती का सम्बन्ध

परब्रह्म की ज्ञानसंचारिका देवी सरस्वती हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में परब्रह्म के संकल्प से एकोऽहं बहु स्याम सृष्टिसंसार में प्रजापति ब्रह्मा को परब्रह्म परमात्मा के रूप में स्वीकार किया गया।— यथा मुण्कोपनिषद् में वर्णन आया है-

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव। विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।।[5]

महाप्रलय के पश्चात् भगवान् नारायण कालात्मिका शक्ति को स्वनिविष्ट कर दीर्घकाल तक योगनिद्रा में निमग्नानन्तर नेत्रोन्मीलन के उत्तरोत्तर क्षण नारायण-नाभि से कमल का प्रादुर्भाव हुआ, जिसकी कर्णिकाओं पर वेदमय ज्ञानमय स्वयम्भू ब्रह्मा समुपविष्ट हैं। जिसके चतुर्दिक् शून्याकाश है। इसी शून्याकाश के चतुर्दिक् दिदृक्षा में इनके चार मुख हुए। यथा भागवत में कहा गया है-

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि।।[6]

तदनन्तर स्वबोध की तीव्राकांक्षा में भगवान् विष्णु को विश्वमूल कारण समझ कर उनकी ब्रह्माजी न स्तुति की। तदनन्तर स्तुतिप्रिय विष्णु प्रसन्न होकर ब्रह्माजी को सृष्टिविस्तार की आज्ञा दी। सर्वप्रथम ब्रह्माजी के चतुर्मुखों से भगवान् विष्णु की ही प्रेरणा से परब्रह्मज्ञानाधिष्ठात्री सरस्वती देवी ने ब्रह्माजी के हृदय में प्रविष्ट कर ब्रह्माजी से चारों वेदों का सस्वर पाठ कराया। यहीं ब्रह्मा तथा सरस्वती के मध्य सगुण, साकार संचरण में सामयिक सम्बन्ध है। परब्रह्म का अप्राकृतिक दिव्यवपु का अलौकिक रूप होता है, जहाँ प्रकृतिजन्य दोषसमूह का कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः परब्रह्म परिधि में पंचब्रह्म (तत्त्वाधिष्ठातृदेव भेद कारण से) विष्णु, शिव गणपति, सूर्य एवं शक्ति हैं, तो त्रिगुणात्मकसृष्टि परिधि में त्रिगुणाधिष्ठातृदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश हैं। इन परब्रह्मसंचारों में अभेदभाव से श्रद्धा, आदर, भक्ति विश्वास से परब्रह्मोपासना का समुचित यथार्थलाभ भक्तों को होगा। परब्रह्म सदैव प्रकृति-नियामक होते हैं, वे प्रकृति नियन्त्रित नहीं होते हैं। अतः उनमें प्राकृतिक गुणों का संचार कथमपि सम्भव नहीं है। उनमें प्राकृतिक दोषों का कुदर्शन तत्त्वानभिज्ञता का अपसंचार है। इससे सर्वथा सर्वदा सभी को बचना चाहिए।

5 मुण्डक, 1.1   6 श्रीमद्भागवत, 3.8.16

ब्रह्मा का मूर्तिपूजन रहस्य

विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा, हनुमानजी की तरह ब्रह्माजी का मूर्तिपूजन सर्वत्र अधुना प्रचलित नहीं है, एक पुष्कर क्षेत्र के अतिरिक्त। इसके कारणों में विभिन्न पुराणों विभिन्न कथानकों का संचार हुआ है। मुख्य रूप से 'पद्मपुराण' के सृष्टि-खण्ड में कथा की प्रामाणिकता विशेष अग्रसर होती है। एकबार पुष्कर में महायज्ञ का समायोजन हुआ। सभी देवता सपत्नीक उपस्थित हुए। ब्रह्माजी आ चुके थे। ज्ञान सम्बन्धधारिणी पत्नी सरस्वती देवी नही आयी थीं। बहुविलम्ब होने पर यज्ञ प्रारम्भ की त्वरा में शंसय अग्रसर हुआ। अपत्नीक ब्रह्माजी यज्ञपात्र नहीं बन सकते है, अतः इन्द्रादि देवों ने तत्काल यज्ञ प्रारम्भकाल तक सात्त्विक, सुलक्षणा सावित्री नाम की कन्या को ब्रह्मा के वामभाग में बैठा दिया। कुछ क्षण पश्चात् ही सरस्वती देवी आ गयीं। एस स्थिति को देखकर क्रुद्ध हो विना जाने-पूछे उन्होंने ब्रह्मा को शाप दे दिया। पुष्कर के अतिरिक्त कहीं आपकी मूर्तिपूजा नहीं होगी। इस स्वरूप से कोई सन्तान नहीं होगी। इसी कथा के कारण ब्रह्मा की पूजा पुष्कर को छोड़ अन्यत्र नहीं होती है। (हलाँकि यह भ्रान्त धारणा है। इसी अंक में ब्रह्मा की अनेक मूर्तियों तथा मन्दिरों का उल्लेख हुआ है।— सम्पादक), परन्तु अमूर्त रूप में हिन्दू धर्म के सबी अनुष्ठानों में इनका पूजन होता है। ये किसी भी यज्ञ के अधिरक देव होते हैं। इनके विना यज्ञ सम्भव नहीं है। सभी प्रकार के हवनों नें यज्ञवेदी के दक्षिण ब्रह्माजी को कृताकृतावेक्षण का कार्यभार देकर स्थापित किया जाता है। ऐसे सर्वयज्ञाधिरक्षक परब्रह्मवितान ब्रह्माजी का पूजन, ध्यान, अनुचिन्तन विशेषज्ञानसंचारार्थ तथा वैदिक संस्कृति में अनिवार्य हितकारक तथा श्रेयःकारक है। इनका मन्त्र भी लघु, सरल एवं सुगम है- ॐ ब्रह्मणे नमः- इस मन्त्र का प्रतिदिन एक माला जप यज्ञ शक्ति का संचारक, वर्द्धक तथा मंगलकारक होगा।

।।ॐ ब्रह्मणे नमः।।

***

लेखकों से निवेदन

"धर्मायण" के आश्विन विशेषांक हेतु आश्विन मास से सम्बन्धित विविध विषयक आलेख आमन्त्रित हैं। विद्वानों से विचार लेने के क्रम में ज्ञात हुआ है कि शक्ति-उपासना, पितृ-उपासना, जीमूतवाहन की उपासना, देववैद्य अश्विनी कुमार आदि का सम्बन्ध इस विशेष मास से रहा है। अतः प्रस्ताव है कि लेखक आश्विन से सम्बन्धित अपना लेख प्रेषित करें। लेखक स्वचयनित विषय की सूचना हमें whatsapp no. 9430676240 पर 15 अगस्त तक भेज दें तो भेज दें तो हमें सुविधा होगी।

श्री रवि संगम*

बिहार में ब्रह्माजी का मन्दिर, ब्रह्मयोनि पर्वत

बिहार सांस्कृतिक तथा धार्मिक समन्वय का प्रदेश रहा है। यहाँ बौद्धों और सनातनियों के बीच का अद्भुत समन्वय दिखाई पड़ता है। गया में ब्रह्मयोनि पर्वत के एक शिखर पर ब्रह्माजी का मन्दिर है। इसे ब्रह्मा की उत्पत्ति का स्थान माना गया है। यहाँ आकर लोग पितरों की मुक्ति के लिए पार्वण तथा तर्पण करते हैं। यहाँ बौद्ध धर्मावलम्बी भी पर्याप्त संख्या में आते हैं। इस प्रकार, हम यह नहीं कह सकते हैं कि ब्रह्मा का एक ही मन्दिर पुष्कर में है।

लोकेशन : गया मुख्यालय से दक्षिण, एन.एच. 22 पर, विष्णुपद मन्दिर से 1 कि०मी० की दूरी पर, मारनपुर स्थित।

महत्त्व : ब्रह्मयोनि पर्वत शृंखला में तीन शिखर (चोटियाँ) हैं, दायें शिखर पर हिन्दू धार्मिक स्थल (ब्रह्माजी का मन्दिर) स्थापित है और

मध्य शिखर बौद्ध सर्किट से जुड़ा पर्यटक स्थल है। गया का यह सबसे ऊंचा पर्वत शिखर है। 793 फीट ऊँचे इस पर्वत पर 424 सीढ़िया चढ़कर पहुँचा जा सकता है। यह स्थल 'पूर्व-वैदिक काल' का माना गया है।

ब्रह्मयोनि पर्वत स्थित ब्रह्मा मन्दिर का पुर्ननिर्माण मराठा सरदार **राव भाऊ साहेब** ने 1834 ई० में करवाया था। यह प्राचीन मन्दिर — ब्रह्मयोनि पर्वत के 'दायें शिखर' पर स्थित हैं। यह अपेक्षाकृत छोटा मन्दिर है, जिसमें **ब्रह्माजी की प्रतिमा** स्थापित है। यह प्रतिमा ब्रह्मा के 'सक्रिय नारी शक्ति का प्रतिक' माना गया है।(मूर्ति का आधा हिस्सा भूमि के उपर और आधा भाग भूमि के अन्दर है)।

ब्रह्मयोनि पर्वत का शिखर

ब्रह्मयोनि शिखर पर जाने का मार्ग

*बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना

पर्वत के शीर्ष पर ब्रह्माजी का मन्दिर

ब्रह्माजी का मन्दिर का परिसर

देवी सरस्वती को आमतौर पर ब्रह्मा की पत्नी के रूप में वर्णित किया जाता है और वह उनकी रचनात्मक ऊर्जा (शक्ति) के साथ-साथ उनके पास मौजूद ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती हैं।

इसके अलावा थोड़ी दूरी पर, ब्रह्मयोनि पहाड़ के उपर दो संकीर्ण गुफाएँ है — जो 'ब्रह्मयोनि गुफा' व 'मातृयोनि गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है। धार्मिक विश्वास है कि इन गुफाओं के अंदर से पार निकल जाने पर 'जीवन के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। इस स्थल पर अष्टभूजा देवी का मन्दिर भी स्थापित है।

मन्दिर परिसर में एक विशाल, प्राचीन वटवृक्ष है— जिसके बारे में विश्वास है कि यहाँ 'ब्रह्माजी ने तप' किया था।

ब्रह्मयोनि का नामकरण मूलतः संस्कृत के दो शब्दों से आया है — ब्रह्म + योनि। ब्रह्म अर्थात हिन्दू देवता, जो सृष्टिकर्ता जाने जाते हैं और योनि अर्थात् अवतार-स्थल। ब्रह्मा को स्वयंभू भी कहा जाता है— जो सृष्टि, ज्ञान व वेद के रचयिता हैं।

ब्रह्माजी के मन्दिर का प्रवेशद्वार

ब्रह्माजी के मन्दिर का गर्भगृह

बौद्ध स्थल की कथा

ब्रह्मयोनि पहाड़ की मध्य चोटी — बौद्ध धर्मावलंबियों के लिये अत्यंत पवित्र स्थल है। यहाँ गौतम बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति के पहले, ज्ञान की तलाश में, ब्रह्मयोनि पर्वत पर कुछ समय निवास किया था। शिखर पर अशोककालीन 'बौद्ध स्तूप' स्थापित है। ब्रह्मयोनि पर्वत का उल्लेख बौद्ध साहित्य में भी मिलता है। माना जाता है कि सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध की स्मृति में यहाँ एक स्तूप का निर्माण कराया था। शिखर पर नवनिर्मित भव्य 'बौद्ध मूर्ति' व 'भगवान बुद्ध का चरण चिन्ह' भी दर्शनीय है। गौतम बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद, सारनाथ में प्रथम धर्मोपदेश के बाद, वे पुनः उरूवेला (बोधगया) होते हुए 100 भिक्षुओं के साथ गयाशीर्ष पर्वत (ब्रह्मयोनि पर्वत) पर आये थे और उन्होंने आदित्य-पर्याय-सूत्र का उपदेश दिया था। ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार, गौतम बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के पहले, ज्ञान की खोज में, जब गयाशीर्ष पर्वत (ब्रह्मयोनि पर्वत) पर पहुँचे तो यहाँ पर उन्होंने श्रमण एवं ब्राह्मणों को कामनाओं के वंशीभूत होकर सकाम कर्म यथा यज्ञ करना, मंत्र-जप करना, सूर्य की ओर अपलक देखना (त्राटक कर्म), उपर हाथ उठाकर दिनभर खडे रहना, उपवास आदि अनेक प्रकार की कठिन तपस्याओं में लीन देखा था। यहाँ कुछ दिन ठहरने के बावजूद गौतम बुद्ध का मन नही लगा और उद्विग्न मन होकर वे वहाँ से चल दिये, और वहाँ से उरूवेला, सेनानी ग्राम (बकरौर, बोधगया) पहुँचे थे। प्राचीन ब्रह्मयोनि पर्वत को पुरातत्त्व निदेशालय, बिहार द्वारा 'सुरक्षित घोषित स्मारक' की सूची में शामिल किया गया है। यहाँ से संपूर्ण शहर को देखा जा सकता है।

देश में प्रमुख ब्रह्मा मन्दिर

भारत में बहुत कम मन्दिर मुख्य रूप से भगवान ब्रह्मा और उनकी पूजा को समर्पित हैं। ब्रह्मयोनि पर्वत, गया स्थित ब्रह्मा मन्दिर के अलावे पूरे देश में 11 प्रमुख स्थानों पर ब्रह्माजी का मन्दिर स्थापित है।

ब्रह्मा के लिए सबसे प्रमुख हिंदू मन्दिर में —

1. ब्रह्मा मन्दिर, राजस्थान के पुष्कर में है। अन्य मन्दिरों में —
2. राजस्थान के बाड़मेर जिले के बालोतरा तालुका के असोत्रा गाँव में एक मन्दिर है। (जिसे खेतेश्वर ब्रह्मधाम तीर्थ के नाम से जाना जाता है)।
3. तमिलनाडु में, ब्रह्मा मन्दिर — मन्दिर शहर 'कुंभकोणम' के कोडुमुडी में और
4. तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में ब्रह्मपुरेश्वर मन्दिर के परिसर में स्थित हैं।
5. आंध्र प्रदेश के तिरुपति के पास, श्रीकालहस्ती के मन्दिर शहर में, ब्रह्मा को समर्पित एक मन्दिर है।
6. आंध्र प्रदेश के चेब्रोलू में भी एक चतुर्मुख ब्रह्मा मन्दिर है।
7. बेंगलुरु, कर्नाटक में ब्रह्मा मन्दिर में सात फीट ऊंची, एक चतुर्मुख प्रतिमा स्थापित है।
8. गोवा के तटीय राज्य में,, राज्य के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में, सत्तारी तालुका के कैरम्बोलिम के छोटे और दूरदराज के गाँव में 5वीं सदी की एक ब्रह्मा मन्दिर है।
9. महाराष्ट्र के सोलापुर जिले से 52 किमी दूर, मंगलवेधा और मुंबई के पास सोपारा में, ब्रह्मा का एक प्रसिद्ध प्रतीक मौजूद है।
10. गुजरात के खेड़ब्रह्मा में उन्हें समर्पित 12वीं सदी का एक मन्दिर है और
11. कानपुर में एक ब्रह्म कुटी मन्दिर भी है। खोखान, अन्नमपुथुर और होसुर में मन्दिर मौजूद हैं।

इसके अलावा त्रिमूर्ति को समर्पित कई मन्दिर परिसरों में भी ब्रह्मा की पूजा की जाती है।

इस भूभाग का ऐतिहासिक महत्त्व (स्थानीय मान्यताएँ)

पटना से 112 कि०मी० दक्षिण-पश्चिम में पर्यटन व तीर्थाटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत से संपन्न प्राचीन पौराणिक नगर गया— हिन्दुओं और बौद्धों का अति प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। सात पर्वतों वाले इस शहर का वैदिक नाम **'ब्रह्मगया'** है। यह स्थल— 'पवित्र मोक्ष स्थल' और 'देवताओं का विश्राम स्थल' माना जाता है। गया शहर को विष्णुनगरी भी कहा जाता है। तन्त्रशास्त्र के अनुसार गया— भैरवीचक्र पर स्थित नगर माना जाता है। गया फल्गु नदी के किनारे बसा यह एक प्राचीन नगर है। रामशिला एवं **ब्रह्मयोनि पहाड़ियों** से घिरा यह शहर 'मन्दिरों की शिल्पकला' के लिए भी दर्शनीय है।

भारतीय धर्मग्रन्थ के अनुसार, सत्ययुग में गया तीर्थ को उत्तम जानकर **ब्रह्माजी** ने यहाँ सर्वप्रथम पिण्डदान किया था। उसी समय से पिण्डदान की प्रथा जारी है। उसी परम्पराको आगे बढ़ाते हुए त्रेता युग में स्वयं भगवान श्रीराम, द्वापर युग में पितामह भीष्म, धर्मराज युधिष्ठिर, भगवान् कृष्ण सहित कई महापुरुषों ने पिण्डदान किया। गया के पितृपक्ष में कुल 45 वेदियों पर पिण्डदान होता है। सभी वेदी पर पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मतामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही के नाम से 12 पिण्ड होते हैं. इसके बाद पिताकुल, माताकुल, श्वसुरकुल, गुरुकुल और नौकर को भी पिण्ड दिया जाता है। प्राचीन समय में यहाँ एक वर्ष में श्राद्ध होता था। पिण्डदान करने के वेदों की संख्या प्राचीन काल में 360 थी, प्रतिदिन एक-एक वेदी पर पिण्डदान करने का प्रावधान था। अब अनेक वेदियाँ लुप्त हो गयीं है। यहाँ प्रतिवर्ष पितरों के लिए तर्पण एवं पिण्डदान के उद्देश्य से आश्विन मास की 1-15 तिथि तक, पितृपक्ष में लाखों तीर्थयात्री आते हैं।

रामायण की कथा के अनुसार राजर्षि गय ने इस नगरी को बसायी थी, किन्तु 'वायु-पुराण' के परवर्ती प्रक्षेप गया -माहात्म्य के अनुसार प्राचीन गया नगर 'गयासुर' नामक राक्षस के नाम पर बसा, जो भगवान विष्णु का अनन्य भक्त था। हिन्दुओं में अटूट आस्था है कि यहाँ पिण्डदान करने से आत्मा का स्वर्गारोहण होता है। इस विश्वास की एक पौराणिक कथा है कि असुरों में गयासुर नाम से प्रसिद्ध एक बलशाली और पराक्रमी राक्षस हुआ, जो केवल तपस्या में प्रीति रखता था। उसका तप सम्पूर्ण भूतों को पीडित करनेवाला था। उसके तप से यमराज की चिंता बढ गयी और देवतागण संतृप्त हो गये। गयासुर ने दीर्घकाल तक कोलाहल पर्वत पर तपस्या की. उसके इस तप से भगवान नारायण ने उसके शरीर को समस्त तीर्थों से अधिक पवित्र होने का वर दे दिया। परिणामस्वरूप मनुष्य, गयासुर का स्पर्शमात्र कर, ब्रह्मलोक का अधिकारी होने लगा। मृत्युलोक के प्राणियों से ब्रह्मलोक की भूमि भरने लगी और अन्य लोक खाली होने लगे, इससे भयभीत हो देवतागण **ब्रह्माजी** के पास पहुँचे. ब्रह्माजी, भगवान शंकर के साथ देवताओं भगवान विष्णु की शरण में गये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण जानकारी देते हुए अपना वर वापस लेने का आग्रह किया. भगवान विष्णु ने देवताओं से यज्ञ के लिए गयासुर के पवित्र शरीर को दान में माँग लेने की सलाह दी। तदनुसार देवताओं ने उसके शरीर को अचल बनाने का निर्णय लिया और इस कार्य के लिए गयासुर से उसकी देह को यज्ञस्थल बनाने की मांग की। गयासुर इस कार्य के लिए सहर्ष तैयार हो गया. इसके पश्चात् **ब्रह्माजी** ने उसके शरीर पर यज्ञ आरंभ किया। यज्ञ पूरा होने के पश्चात् गयासुर फिर उठने लगा। **ब्रह्माजी** ने यम को कहलाया, यम ने ब्रह्मा के आदेश पर धर्मशिला लाकर गयासुर के मस्तक पर रखा. इसके बावजूद भी उसका हिलना बंद नहीं हुआ। तब देवतागण बेचैन हो गये। पुनः भगवान विष्णु के पास पहुँचे और उन्हें सारी बात बतायी। तब भगवान विष्णु गदाधर रूप ले प्रकट हो, गयासुर के तप से प्रभावित होकर, वर माँगने को कहा. तब गयासुर ने कहा कि जब तक पृथ्वी का अस्तित्व रहे, चाँद और तारे रहे, ब्रह्मा-विष्णु-महेश इस शिला पर विराजमान रहेगें। भगवान विष्णु ने एवमस्तु कहते हुए गयासुर के उपर रखे धर्मवती शिला को इतना कस के दबाया कि उनका चरण-चिह्न स्थापित हो

गया. 'भगवान् विष्णु के चरण का छाप' आज भी **विष्णुपद मन्दिर** में विद्यमान है। तभी से गया एक पवित्र स्थान माना जाने लगा है। फल्गू नदी के तट पर बसे, गया नगर का इतिहास 'बौद्ध काल से लेकर रामायण काल' तक जाता है — जब राम और सीता 'फल्गू नदी' के किनारे पिण्डदान के लिये गये थे. पिण्डदान की परम्परा आज भी फल्गू नदी के तट पर जारी है।

प्राचीन काल से गया **मगध साम्राज्य** का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। पूर्व में मगध का नाम **कीकट** था और इसे अनार्यों का निवास स्थान समझा जाता था। महाभारत के अनुसार, मगध के प्राचीन राजवंश का संस्थापक 'बृहप्रिय' था, जो उपरिचर का पुत्र और जरासंध का पिता था। मगध के नये राजवंश का सर्वप्रथम शासक बिंबिसार हुआ, जिसने अंग को जीतकर दक्षिण बिहार का एकीकरण किया और उसने कोसल तथा वैशाली से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे. इसके शासनकाल में मगध एक समृद्ध राज्य बना। गयाधाम अद्भुत स्थान पर स्थित है। यहाँ से पूर्व दिशा में वैद्यनाथधाम और पश्चिम दिशा में स्थित काशी का विश्वनाथधाम लगभग समान दूरी पर स्थित हैं।

वायु पुराण के अनुसार, फल्गु नदी के तट पर गया नगर में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ तीर्थ न हो. उसके अनुसार किसी की संतान गयातीर्थ के लिए जाये तो उसके लिए ब्रह्मज्ञान, गोशाला में मृत्यु तथा कुरुक्षेत्र तीर्थ का वास व्यर्थ है। इस पुराण के अनुसार, गया जिन देवताओं के नाम से ख्यात है, वे सब गयासुर के शरीर को स्थिर रखने के लिए साक्षात् देवस्वरूप उनके शरीर पर बैठे हुए हैं। **वाल्मीकि रामायण व विष्णुपुराण** के अनुसार सूर्य के पौत्र 'गय' के नाम से गया बसाया था। **महाभारत** में भी युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा के क्रम में उल्लेख है कि इस नगरी के संस्थापक राजर्षि गय थे, जिन्होंने यहाँ विशाल यज्ञ किया था। **वामन पुराण** में उल्लेख किया गया है कि गया नगरी को स्थापित करनेवाले मनु के पौत्र 'अतुर्वरग गय' चंद्रवंशी थे और उन्होंने ही गया नगरी को बसाया था। राजा गय ने यहाँ एक ऐसे यज्ञ का आयोजन किया था, जिसमें अन्न के ढेर कई पर्वतों,जैसे लग रहे थे. ऐसा कोई भी जीव न बचा हो जो इस यज्ञ से तृप्त न हुआ हो.

प्रायः प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध करने का महत्त्व है, परन्तु गया में श्राद्ध का अपना अपने आप में विशेष महत्त्व है। पुराण साहित्य के अनुसार — जो मनुष्य गया पहुँच कर श्राद्ध करता है, उसके पितृगण को तृप्ति प्रदान करनेवाला जन्म सफल हो जाता है। यहाँ के श्राद्ध में पितरों के पूजन से साक्षात् भगवान विष्णु पूजित होते हैं. गया की कण-कण भूमि श्राद्ध के लिए उपयुक्त है। गया में पिण्डदान का धार्मिक महत्त्व बहुत ज्यादा है।

***

भच्छी गाँव में स्थापित ब्रह्मा का मूर्तिलेख

बिहार प्रान्त स्थित दरभंगा जिला के बहेड़ी के निकट अवस्थित भच्छी गाँव से ब्रह्मा की एक मूर्ति मिली है, जिसके पादपीठ पर एक पंक्ति का लेख इस प्रकार है। डा. सुशान्त कुमार द्वारा प्रेषित छाया से पं० भवनाथ झा के द्वारा यह लेख इस प्रकार पढ़ा गया है- "श्री श्री मौ. (मौहूर्तिक) पालीसं. बल्ली जगद्धरस्य' अर्थात् पाली बलिराजगढ़ मूल के मौहूर्तिक =ज्यौतिषी जगद्धर के द्वारा यह प्रतिमा स्थापित की गयी। इसकी लिपि 11-12वीं शती की प्रतीत होती है। (प्राप्त मूर्ति के सम्बन्ध में पढ़ें- इसी अंक में डा. सुशान्त कुमार का आलेख)
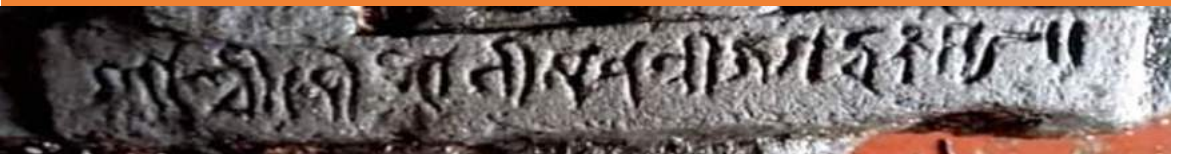
ब्रह्मा की मूर्तियों का ऐतिहासिक विवेचन

डॉ० सुशान्त कुमार*

पुरातत्त्व की दृष्टि से ब्रह्मा प्राचीनकाल में पूजित रहे हैं। इनकी अनेक मूर्तियाँ विभिन्न कालों में बनायी गयी है। साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्त्विक तथा मूर्तिकला की परम्परा के आधार पर ब्रह्मा का स्वरूप, उनकी ऐतिहासिकता, तथा प्रसिद्धि पर आधारित सूचनाएँ इस आलेख में दी गयी है। विशेष रूप से जब ऐसा कहा कहा जाता है कि भारत में ब्रह्मा के एक ही मन्दिर है तब भच्छी गाँव की ब्रह्मा की मूर्ति महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

भारतीय इतिहास में हमें सर्वप्रथम प्रकृति पूजा के सम्बन्ध में साहित्यिक जानकारी वैदिक ग्रन्थों से मिलती है, लेकिन प्रतिमाओं की पूजा अर्चना के सम्बन्ध में पुरातात्त्विक जानकारी हड़प्पा सभ्यता से दिखाई पड़ती है। हड़प्पा सभ्यता में मूर्तिपूजा को देखने के बाद वैदिक काल में हम प्रतिमाओं की जगह प्रकृति पूजा को देखते हैं तो एक अनायास यह प्रश्न उठता है कि क्या सही में वैदिक लोग, जिन्हें हम आर्य कहते हैं, वे केवल प्रकृति पूजक थे। ऐसी स्थिति में भारत में मूर्तिपूजा का प्रारम्भ कब हुआ, इस विषय को जानने के क्रम में मतभेद उत्पन्न हो सकता है। इसके अलावा मूर्तिपूजा का प्रारम्भ भारत में ही हुआ या मूर्तिपूजा की परम्पराभारत में किसी दूसरे देश से आया, इस सम्बन्ध में भी आधी अधूरी कहानी सुनाई देती है।

इसके बाद मूर्तियों के सम्बन्ध में एक और प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि भारत में मूर्तिपूजा सर्वप्रथम हिन्दू धर्म से प्रारम्भ हुआ या किसी और धर्म से होते हुए हिन्दू धर्म में आया। इन सवालों को देखने के समय हड़प्पा संस्कृति से ज्ञात मातृदेवी की मूर्ति को किसी एक धर्म से नहीं जोड़ा जाता है। ऐसे सवालों के हमने यहाँ इस कारण उठाया है कि इस आलेख में ब्रह्मा की मूर्ति और ब्रह्मा की पूजा के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों के उत्तर तलाश कर रहे हैं, क्योंकि एक ओर ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता कहा गया है, इन्हें सृष्टिकर्ता कहा गया है तो दूसरी ओर ब्रह्मा को उपेक्षित मान लिया गया, उनकी पूजा को उपेक्षित माना गया है। ब्रह्मा की पूजा अर्चना होती है और हमें ब्रह्मा की कई प्रतिमाएँ देखने को मिली है और ब्रह्मा की पूजा पाठ की विस्तृत जानकारी भी प्राप्त होती है। इस कारण हमने प्रस्तुत आलेख में न केवल बिहार बल्कि देश के पैमाने पर ब्रह्मा की प्रतिमाओं को ढूंढने की विनम्र कोशिश की है, ताकि विद्वत् समाज का ध्यान ब्रह्मा की प्रतिमाओं की ओर आकर्षित किया जा सके, ताकि इस पर विचार किया जा सके कि सामाजिक स्तर पर ब्रह्मा की पूजा अर्चना क्यों कम हुई?

*भास्कर भवन, शिवपुरी, बेगूसराय (बिहार)। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के शोधार्थी, मूर्तिविज्ञान विषय पर विशेष अध्ययन एवं शोधकार्य, सम्प्रति— उत्तरी बिहार के पुरातत्व एवं इतिहास पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करते हुए शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक क्रियाकलाप।

'पौराणिक काल का देवता-संघ यद्यपि एकेश्वरवाद का समर्थन करता है, तथापि प्राथमिक रूप में यह तीन आधारों पर टिका है। ये हैं- शिव, विष्णु और ब्रह्मा। आगे चलकर इसमें ब्रह्मा तो हट गये, पर शक्ति, सूर्य और गणपति ये तीन नये जुड़ गये और पंचदेवोपासना का स्वरूप खड़ा हुआ'।[1] इस आधार पर यह तो समझा जा सकता है कि त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) के एक रूप में ब्रह्मा प्रतिष्ठित रहे हैं। वेदों में ब्रह्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वे यज्ञ की अग्नि के रक्षक कहे गये हैं तथा सम्पूर्ण यज्ञ के पर्यवेक्षक के रूप में भी इनकी भूमिका का वर्णन मिलता है। कालान्तर में ब्रह्मा के सम्बन्ध में पूजा से दूर होने की बात आने लगी।

सम्पूर्ण देश में ब्रह्मा की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें से कुछ मूर्तियाँ मन्दिरों में है तो कुछ संग्रहालयों में संगृहीत है। यह भी आस्था के साथ कहा जाता है कि ब्रह्मा का एकमात्र मन्दिर पुष्कर में है, जबकि कई जगहों की मन्दिरों में ब्रह्मा के मूर्ति की पूजा अर्चना होती है। सिंधु-सभ्यता प्रतीक (मूर्ति) पूजक थी। मातृदेवी की पूजा प्राचीन काल में ईजियन प्रान्त से सिन्धु-प्रान्त के सभी देशों — फारस (ईरान), मिस्र, सीरिया, इराक, ट्रांसकास्पिया, लघु एशिया आदि में प्रचलित थी। इन देशों की मूर्तियों में इतनी विशिष्ट समानताएँ हैं कि यह धारणा स्वीकार करनी पड़ती है कि प्रागैतिहासिक युग में मातृ-पूजा का भूमध्य सागर से भारत तक एक प्रचार था। बलूचिस्तान में भी मातृदेवी की कुछ मृण्मयी मूर्तियाँ मिली हैं। हड़प्पा सभ्यता में मातृदेवी के पूजा की संभावना दिखाई देती है और वैदिक काल में प्रकृति पूजा के तत्व विद्यमान हैं। ऋग्वेद में मातृदेवी के लिए 'अदिति', 'प्रकृति' या 'पृथ्वी' शब्द का प्रयोग हुआ है।' सांवलिया बिहारी लाल वर्मा की पुस्तक 'भारत में प्रतीक पूजा का आरंभ और विकास' में श्रीधर वासुदेव सोहोनी ने भूमिका में स्पष्ट किया है कि 'ग्रन्थकर्त्ता ने इस विषय पर यह निष्कर्ष निकाला है कि "वैदिक काल में प्रतीक (मूर्ति)-पूजा आर्यों में नहीं थी। ज्ञान और कर्म-संपति का, प्रभु-अनुग्रह के साथ, सामंजस्य ही वैदिक भक्ति का स्वरूप था"।

जैसा कि मैंने ऊपर बतलाया है, वैदिक काल का अधिकांश वाङ्मय इस ग्रन्थकर्त्ता के सिद्धांत की पुष्टि अवश्य देता है, यद्यपि कहीं-कहीं मूर्ति-पूजा के संकेत भी उसमें मिलते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद में रुद्र की रंगीन मूर्ति, वरुण का सोने का कवच तथा मारुतों की मूर्ति के भी उल्लेख मिलते हैं। यह अनुमान निकालना सही नहीं होगा कि तत्कालीन मूर्तिपूजा केवल अनार्यों में ही प्रचलित थी या वैदिक युग के पश्चात् साधारण जनता में ही स्वीकृत थी।'[2]

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में पाणिनि की 'अष्टाध्यायी'[3] में देव मूर्तियों का वर्णन मिलता है तथा इसके लिये अर्चा अर्थात् प्रतिमा शब्द का उल्लेख मिलता है। इस बात की संभावना है कि भारत में मूर्ति पूजा की शुरूआत यज्ञादि विधि विधान के मद्देनजर हुआ हो। मूर्ति-पूजा और मूर्ति-निर्माण परम्परा वेद में है अथवा पुराण में, संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ में है अथवा अर्वाचीन ग्रन्थ में, यह शुरू कब और कैसे हुआ। यह एक अलग विषय है लेकिन यह कहा जा सकता है कि जब कभी मूर्ति निर्माण शुरू हुआ, ब्रह्मा की महत्ता प्रारम्भ से ही बनी रही है। स्टेला क्रमरिश[4] ने लाल

1. जोशी, नील पुरुषोत्तम प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, द्वितीय संस्करण, जनवरी, 2013 पृष्ठ 21
2. सांवलिया बिहारी लाल वर्मा, भारत में प्रतीक पूजा का आरंभ और विकास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1989, पृ. घ
3. अष्टाध्यायी, पाणिनि, 5/3/96, 5/2/1
4. Indian sculpture Stella Kramrisch, Motilal Banarsidas publiahers private limited delhi, 2013, isbn 978-81-208-3614-3, Page 143-144

पत्थर से बनी हड़प्पा की एक प्रतिमा के (प्लेट संख्या— 1) अधूरे धड़ के पीछे से दिख रहे मांशल दृश्य को शिल्पकार द्वारा इसकी शक्ति को शारीरिक सौष्ठव से देखने की कोशिश की है। उनका अनुमान है कि इसी तरह का शारीरिक सौष्ठव, जो शक्ति का प्रतीक है; बाद के काल में यक्ष और यक्षणी की मूर्तियों में देखने को मिलती है। पटना से प्राप्त यक्ष की मूर्ति, तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के उत्तराध, साइड व्यू का हिस्सा (प्लेट संख्या— 2)। स्टेला क्रमरिश ने इस तरह का शारीरिक सौष्ठव न केवल मौर्य कला में देखने की कोशिश की है, बल्कि ऐसे ही शारीरिक सौष्ठव से सम्बन्धित रूप देवताओं के लिए अनिवार्य काया के रूप में देखने की कोशिश की है, जहाँ उत्पादन और रचनात्मक गतिविधि की शक्ति दिखाई देती है। जैसे— ब्रह्मा, अग्नि और पंचिका, जम्भल और गणेश। लम्बे कालखंड में प्रतिमा संबंधी विशद अध्ययन से भारतीय मूर्तिकला में मूर्ति की बनाबट परंपरागत रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी है। सामान्य अध्ययन के बाद प्राप्त मूर्तियों में तरह तरह के प्रभाव और शैलियों को समझने की आवश्यकता हो जाती है, जिसे ग्रीक प्रभाव या गांधार प्रभाव या फ़िर बोमियान प्रभाव अथवा मथुरा प्रोटोटाइप प्रभाव की दृष्टि से समझने की आवश्यकता बन जाती है।

ब्रह्मा की गणना ब्राह्मण धर्म के त्रिदेवों (ब्रह्मा, शिव) में की गयी है और उन्हें सृष्टि के रचना-कार्य से संबद्ध किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के समान लोकप्रिय नहीं थे, इसी कारण ब्रह्मा से सम्बद्ध स्वतन्त्र सम्प्रदाय भी विकसित नहीं हुआ। वैदिक तथा परवर्ती ब्राह्मण साहित्य में ब्रह्मा के प्रचुर उल्लेख उपलब्ध हैं किन्तु कालान्तर में पुराणों के काल तक ब्रह्मा की लोकप्रियता में स्पष्टतः गिरावट आ गयी जिसका मुख्य कारण, परवर्ती ग्रन्थों में विष्णु और शिव का ब्रह्मा से श्रेष्ठ निरूपित किया जाना है।

ब्रह्मा कभी सर्जन कर्ता के रूप में दिखते हैं तो कभी पूजन से दूर दिखते हैं। पंकज लता श्रीवास्तव हिन्दू, जैन तथा बौद्ध प्रतिमा-विज्ञान में ब्रह्मा के सम्बन्ध में लिखती हैं— 'वर्तमान युग में ब्रह्मा अखिल विश्व के सर्जनकर्ता के रूप में ज्ञात हैं, किन्तु ऋग्वेदिक काल में यह कार्य विश्वकर्मा, प्रजापति, धाता, विधाता, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मणस्पति आदि विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित था।[5] ऋग्वेद में यद्यपि ब्रह्मा शब्द भी अज्ञात नहीं है, तथापि उसका प्रयोग मुख्य रूप से एक विशेषण की भाँति[6] अथवा पारिभाषिक अर्थ में[7] ही हुआ है, किसी स्वतन्त्र देवता के अर्थ में नहीं। उत्तर वैदिक काल में आकर अवश्य ब्रह्मा का वर्णन एक सर्वशक्तिसम्पन्न स्वतन्त्र देवता की भाँति मिलने लगता है।[8] यहाँ अनेक स्थानों पर ऋग्वेद में वर्णित विभिन्न सृष्टिकारक देवताओं के मध्य एकता भी स्थापित की गई है और प्रजापति को विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ आदि से अभिन्न बताया गया है।[9] फिर भी अभी तक ब्रह्मा और प्रजापति में एकरूपता नहीं आ पाई थी, यद्यपि दोनों का मुख्य कार्य एक ही सृष्टि रचना से सम्बन्धित था। यहाँ पर ब्रह्मा की स्थिति प्रजापति से श्रेष्ठ है और प्रजापति को ब्रह्मा से उत्पन्न तथा ब्रह्मा को 'स्वयंभू' कहा गया है।[10] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी ब्रह्म और प्रजापति का उल्लेख दो पृथक देवताओं की भाँति हुआ है।[11] वस्तुतः इनकी एकता सर्वप्रथम

5. ऋग्वेद 10,72,2; 10,81,2; 10,81,5-7; 10,82,2-3; 10,121,1-10; 10,128,7 आदि।
6. उपरोक्त 2.1.3; 4.50.8.
7. उपरोक्त 10,141,3.
8. शत.बा. 11.2.3.1, मुण्डक उप 1.1.1; मनुसंहिता में ब्रह्मा को 'सर्वलोकपितामह कहा गया है और उनकी उत्पत्ति हैम-अण्ड' से बताई है (DHI, p. 511)।
9. शत.बा. 82.1.10 ऐत.बा.. 12.10. पृ. 496 कौ. ब्रा 24.5; 5.4, पृ. 30 वा. स. 12.61; तै. सं. 1,766 5.5.1.21
10. शता, 10.65.9 13.7.1.1.
11. तै.बा. 3,10,11,7

सूत्रकाल में आकर स्थापित हुई, जहाँ ब्रह्मा और प्रजापति एक ही देवता के दो नाम हैं (प्रजापतिर्ब्रह्मा)[12]। बौधायनधर्मसूत्र में प्रजापति के साथ ही ब्रह्मा के चतुर्मुख, परमेष्ठिन, हिरण्यगर्भ और स्वयम्भुव नामों का उल्लेख भी मिलता है।[13] महाकाव्यों के प्रारम्भिक अंशों में ब्रह्मा के लिए आत्मभू, सर्वलोक-पितामह, आदिदेव, लोकेश्वरेश्वर आदि विरुदों का प्रयोग पूर्व महाकाव्यकाल में ब्रह्मा की श्रेष्ठ स्थिति का परिचायक है।[14] रामायण के अयोध्याकाण्ड में स्वयंभू ब्रह्मा की उत्पत्ति जल से बताई गयी है[15] और महाभारत में तो एक स्थान पर स्वयं शिव को ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न कहा गया है[16], किन्तु इन्हीं महाकाव्यों के आगामी अंशों में ब्रह्मा की स्थिति शनैः शनैः हीन होती प्रतीत होती है।'[17]

इस तरह उतार चढ़ाव के साथ ब्रह्मा की मूर्तियाँ हमें प्रतिमा लक्षण के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण भारत से छिटपुट रूप में मिलती है। भारतीय प्रतिमा लक्षण और प्रतिमशास्त्र से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में "विष्णुधर्मोत्तरपुराण, बृहत्संहिता (वराहमिहिरकृत), वामनपुराण, मत्स्यपुराण, हरिवंशपुराण, मार्कण्डेयपुराण (देवीमाहात्म्य), तिलोयपण्णात्ति (यतिबृषभकृत, जैन-दिगम्बर), हरिवंशपुराण (जिनसेनकृत, जैन-दिगम्बर), चतुर्विंशतिका (बप्पभट्टिसूरिकृत, जैन-श्वेताम्बर), कहावली (भद्रेश्वरकृत, जैन-श्वेताम्बर), आदिपुराण (जिनसेनकृत-महापुराण का पूर्वार्द्ध, जैन-दिगम्बर), उत्तरपुराण (गुणभद्रकृत-महापुराण का उत्तरार्द्ध, जैन-दिगम्बर), निर्वाणकलिका (पादलिप्तसूरीकृत, जैन-श्वेताम्बर), समरांगणसूत्रधार (भोजकृत), स्कन्दपुराण, साधनमाला (बौद्ध), निष्पन्नयोगावली (अभयाकरगुप्तकृत- बौद्ध), पंचरक्षा सूत्र (बौद्ध), प्रतिष्ठासारसंग्रह (वसुनन्दिकृत, जैन-दिगम्बर), प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधरकृत, जैन-दिगम्बर), त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत, जैन-श्वेताम्बर), मन्त्राधिराजकल्प (सागरचन्द्रसूरिकृत, जैन-श्वेताम्बर), अपराजितपृच्छा (भुवनदेवकृत ब्राह्मण एवं जैन), आचारदिनकर (वर्धमानसूरिकृत, जैन-श्वेताम्बर), रूपमण्डन एवं देवतामूर्तिप्रकरण (सूत्रधारमण्डन- कृत ब्राह्मण एवं जैन), प्रतिष्ठातिलकम (नेमिचन्द्रकृत, जैन-दिगम्बर) दक्षिण भारत लेल मानसार (ब्राह्मण एवं जैन), कारणागम, मयमतम, काश्यपशिल्पसंहिता, अंशुमद्भेदागम, शिल्परत्न, शिल्पप्रकाश (उड़ीसा का शिल्पग्रन्थ, मुख्यतः श्लोक संग्रह), की जानकारी मिलती है।[18]

ब्रह्मा से सम्बन्धित प्रतिमा की विशद जानकारी विष्णुधर्मोत्तरपुराण, मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, गरुडपुराण, समरांगणसूत्रधार, मानसोल्लास, अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण तथा पाँचरात्र संहिताओं में मिलती है[19] जबकि ब्रह्मा की प्रतिमा सम्बन्धी विशेषताओं का वर्णन बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर, अग्नि-पुराण, अंशुमद्भेदागम, सुप्रभेदागम, शिलारत्नम्, रूपमण्डन और मयमतम् आदि में किया गया है।[20]

12. आ.गृ.सू.. 3.4.1. 13.बौ.ध.सू. 2,5,9,5.

14. रामायण, 2.14,49, 6,61,23, महाभारत, 1,188, 18 3.30,22,332 आदि।

15. 'रामायण, 2,110,3. 16. महाभारत, 12,341,17-18.

17. श्रीवास्तव पंकज लता, 2012, सुल्तानपुर, ISBN 978-81-906505-9-5, पृष्ठ 267

18. मारुतिनंदन तिवारी, कमल गिरि, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, वाराणसी, 1997 पृष्ठ- xiii-xiv

19. श्रीवास्तव पंकज लता, 2012, सुल्तानपुर, ISBN 978-81-906505-9-5, पृष्ठ 269-270

20. Tiwari Jalaj, Brahma in the Art of Bihar in HISTORY, CULTURE AND ARCHAEOLOGICAL STUDIES, Recent Trends (Commemoration Volume to Prof. M.L.K. Murty) VOLUME-III, Editor- Pedarapu Chenna Reddy, 2018, pp 763-767

अपराजितपृच्छा [21] में ब्रह्मा को चतुर्मुख कहा गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार ब्रह्मा के मुख और भाव सुन्दर वर्ष तप्त कांचन के समान हो। वे कुण्डल, किरीट, माला, मणि एवं रत्नों से निर्मित उज्ज्वल हारों, मुक्तामय कटक व केयूरो तथा समस्त आभूषणों से विभूषित हो और अपने चारों हाथों में क्रमश: पुस्तक, अक्षमाला स्रुवा और कमण्डलु धारण किये हों। [22] देवतामूर्तिप्रकरण में ब्रह्मा को संक्षेप में केवल पुस्तक अक्षसूत्र, स्रुव और कमण्डलु से युक्त कहा गया है।[23]

इन ग्रंथों से ब्रह्मा के आसन, आयुध, मुख, जटा, जपमाला, स्रुव, पुस्तक, कमण्डलु आदि के बारे में जानकारी मिलती है। मत्स्यपुराण में ब्रह्मा को कमण्डलु लिये हुए, कहीं चतुर्मुख कहीं हंसारूढ़ तथा कहीं कमलासीन बताया गया है।[24] ब्रह्मा के बायें सावित्री और दक्षिण में सरस्वती की प्रतिमा बनाने का विधान है।[25] प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकाल तक आते आते भारतीय कला का स्वरूप स्थिर हो चुका था। गुप्तकाल से ब्रह्मा की प्रतिमाओं का अंकन चार मुख-युक्त होने लगा। मथुरा से ब्रह्मा की अनेक गुप्तकालीन मूर्तियाँ मिली है।[26] गुप्तकालीन ब्रह्मा के दर्शन हमें देवगढ़ के अनन्तशायी विष्णु की प्रतिमा में भी होता है। इनकी ललितासन एवं कमलासन प्रतिमाएँ चालुक्य राजाओं के समय में भी बनी।[27]

पूर्व मध्यकाल में ब्रह्मा के कुछ स्वतन्त्र मन्दिर भी बनें, यद्यपि अन्य ब्राह्मण देवों की तुलना में इन मन्दिरों की संख्या नगण्य सी है। मध्यभारत में दुदही एवं खजुराहो, गुजरात-राजस्थान में वसन्तगढ़ एवं खेड्ब्रह्मा तथा दक्षिण भारत में उन्कल एवं कुम्भकोणम-जैसे स्थलों पर ब्रह्मा के मन्दिर बने। ब्रह्मा का एक जीता-जागता मन्दिर अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ में है। वसन्तगढ़ के मन्दिर (लगभग 7वीं शती ई०) में त्रिमुख ब्रह्मा की मानवाकार स्थानक मूर्ति प्रतिष्ठित है। द्विभुज ब्रह्मा के हाथों में अक्षमाला और कमण्डलु हैं। दुदही मन्दिर के गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर त्रिमुख ब्रह्मा की हंस पर आसीन मूर्ति उत्कीर्ण है। मन्दिर के अभिलेख में चतुर्मुख (ब्रह्मा) और उनकी शक्ति, सावित्री के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गयी है। खेड्ब्रह्मा का मन्दिर एक विशेष दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मन्दिर पर उत्कीर्ण तीन पार्श्व देवताओं के निरूपण में ब्रह्मा के ही तीन अलग-अलग पक्षों को उजागर किया गया है। पश्चिमी रथिका की मूर्ति में स्त्रुक्, पुस्तक एवं अक्षमाला से युक्त चतुर्मुख ब्रह्मा का वाहन वृषभ है। समान लक्षणों वाली उत्तर एवं दक्षिण की रथिकाओं की मूर्तियों में वाहन क्रमश: अश्व और गरुड है। ये वाहन ब्रह्मा को शिव, सूर्य और विष्णु से सम्बन्धित करते हैं। इन मूर्तियों को संघात या संयुक्त मूर्तियों की कोटि में भी रखा जा सकता है।[28]

बिहार की प्राचीन हिन्दू प्रतिमाएँ में पुष्पा सिन्हा ने बिहार से प्राप्त ब्रह्मा की प्रतिमाओं के बारे में लिखा है, 'बिहार की कला में ब्रह्मा का मूर्तन परवर्ती गुप्तकाल से ही प्रारम्भ होता है किन्तु अभी तक केवल दो ही मूर्तियाँ प्रकाश में आयी है। भोजपुर जिले के मसाढ़, पटना संग्रहालय में संरक्षित ब्रह्मा की एक प्रतिमा, गया संग्रहालय में संरक्षित ब्रह्मा की एक प्रतिमा, दुग्धेश्वरनाथ महादेव मन्दिर, रानीघाट, पटना में पूजित पंचमुखी शिवलिंग में ब्रह्मा का अंकन, नालन्दा से प्राप्त अभिलेखयुक्त मिट्टी की मुद्रा पर आसीन पुरुष आकृति, जी. डी. कॉलेज बेगूसराय स्थित

21. अपराजितपृच्छा, 214,1-2
22. उपरोक्त, 214, 7-9
23. देवतामूर्तिप्रकरण, 4, 4-7
24. मत्स्य पुराण, 259/40
25. उपरोक्त, 259/44
26. श्री भगवान सिंह, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमाएँ, पृ.- 119
27. इन्दुमती मिश्र, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, पृ. - 114
28. मारुति नन्दन तिवारी, कमल गिरि, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, वाराणसी पृ. - 100

काशी प्रसाद जायसवाल संग्रहालय, बेगूसराय (मूर्ति संख्या– 339), नालन्दा के एक मन्दिर-अवशेष के फ़लक संख्या 13 में ब्रह्मा की मूर्ति को उत्कीर्ण बताया गया है'।[29]

पिछले दिनों डॉ० जलज कुमार तिवारी का "बिहार की कला में ब्रह्मा" विषयक एक लेख आया है, जिसमें उन्होंने बताया है कि "पूर्वी भारत में विशेष रूप से बंगाल क्षेत्र में ब्रह्म प्रतिमाओं की अच्छी संख्या मिली है। बिहार में ब्रह्मा की स्वतन्त्र छवियाँ वैष्णव, शैव और सूर्य छवियों की तुलना में तुलनात्मक रूप से कम हैं। बिहार से ब्रह्मा की कुछ मूर्तियों के रूप में उन्होंने भोजपुर, सीताराम उपाध्याय संग्रहालय बक्सर, नालंदा जिले के सूर्य मन्दिर औंगरी, बड़ीअंत (जिला नालंदा), गया संग्रहालय में प्रदर्शित ब्रह्मा, विष्णुपद मन्दिर परिसर, गया पटना संग्रहालय में प्रदर्शित ब्रह्मा, भारतीय संग्रहालय कोलकाता में रखी गई बिहार से बरामद ब्रह्मा की चार पत्थर की मूर्तियाँ (संख्या 3902, 3903, 3904, 3905), जी. डी. कॉलेज बेगूसराय स्थित काशी प्रसाद जायसवाल संग्रहालय, बेगूसराय, भच्छी (दरभंगा), मैबी (मधुबनी), राजा-विशाल का गढ़, वैशाली की चर्चा की है'।[30] पुष्पा सिन्हा और जलज तिवारी, दोनों व्यक्ति ने जी. डी. कॉलेज बेगूसराय स्थित काशी प्रसाद जायसवाल संग्रहालय, बेगूसराय में ब्रह्मा की एक प्रतिमा होने की जानकारी देते हैं, लेकिन मुझे अपने अन्वेषण के दौरान इस संग्रहालय में ब्रह्मा की कोई प्रतिमा नहीं दिखी।

पश्चिम में गण्डक, पूर्व में महानन्दा, दक्षिण में गंगा और उत्तर में शिवालिक श्रेणी की उपत्यका में अवस्थित विदेह अथवा तिरहुत या मिथिला में पाषाण प्रतिमाओं के अध्ययन से सम्बन्धित कार्य बहुत ही कम हुए हैं। प्रारम्भिक कार्यों की शुरुआत डॉ० विजयकान्त मिश्र की पुस्तकों में देखा जा सकता है। मिथिला प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित इनकी दो पुस्तकें हैं– "मिथिला आर्ट एन्ड आर्टिटेक्चर" 1978 में प्रकाशित एवं "कल्चरल हैरिटेज ऑफ मिथिला" 1979 में प्रकाशित। "कल्चरल हैरिटेज ऑफ मिथिला" के दूसरे खण्ड में स्कल्पचर की चर्चा की गई है। डा. विजयकान्त मिश्र की यह पहली किताब है, जिसमें मिथिला की प्रतिमाओं के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की गयी है। इसके पूर्व मिथिला से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, लेकिन किसी अन्य पुस्तक में इस तरह से प्रतिमाओं की जानकारी नहीं मिली। "कल्चरल हैरिटेज ऑफ मिथिला" नामक पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व मिथिला के इतिहास से सम्बन्धित प्रकाशित कुछ पुस्तकें हैं– "हिस्ट्री ऑफ तिरहुत", "हिस्ट्री ऑफ मिथिला", हिस्ट्री ऑफ विदेह", "हिस्ट्री ऑफ वैशाली" आदि। डा. विजयकान्त मिश्र के पुस्तक प्रकाशन के ढाई दशक बाद सत्यनारायण सत्यार्थी की "दर्शनीय मिथिला", सुनील कुमार मिश्र की "मिथिला के मन्दिर, गढ़ एवं पुरातत्व", सुशान्त कुमार की "दरभंगा प्रक्षेत्र की पाषाण प्रतिमाएँ" जैसी पुस्तकें प्रकाशित हुई, जो इस क्षेत्र की प्रतिमाओं से सम्बन्धित है। इन पुस्तकों में इस क्षेत्र से मिली ब्रह्मा की कुछ मूर्तियों के बारे में जानकारी दी गयी है।

डॉ० मिश्र ने मिथिला से प्राप्त सभी प्रतिमाओं को तीन मुख्य वर्ग में बाँटा है– वैष्णव, शैव और शाक्त। इन तीनों के अलावा भी कई अन्य प्रतिमाओं के बारे में उन्होंने लिखा है। जैसे– बुद्ध, तारा, गणेश, सूर्य, ब्रह्मा एवं गंगा यमुना। उन्होंने विदेश्वर स्थान में ब्रह्मा के प्रतिमा होने की जानकारी दी है।[31] हमने अपने अन्वेषण में विदेश्वर स्थान में ब्रह्मा की कोई प्रतिमा नहीं देखी है। यहाँ अग्नि की प्रतिमा स्थापित है। ब्रह्मा को भी दाढ़ी के साथ दिखाया जाता है,

29. सिन्हा पुष्पा, बिहार की प्राचीन हिन्दू प्रतिमाएँ, पटना, 2010 पृ. 1-5
30. Tiwari Jalaj, Brahma in the Art of Bihar in HISTORY, CULTURE AND ARCHAEOLOGICAL STUDIES, Recent Trends (Commemoration Volume to Prof. M.L.K. Murty) VOLUME-III, Editor- Pedarapu Chenna Reddy, 2018, pp 763-767
31. मिश्र विजयकांत, कल्चरल हैरिटेज ऑफ मिथिला, मिथिला प्रकाशन, इलाहाबाद 1979, पृष्ठ 270

चित्र सं. 1
ब्रह्मा की मूर्ति, मैबी, मधुबनी

चित्र सं. 2
ब्रह्मा की मूर्ति-1, भच्छी, मधुबनी

चित्र सं. 3.
ब्रह्मा की मूर्ति, मनमा, जाले

इसलिये यह सम्भावना है कि डॉ० मिश्र को दाढ़ी के कारण ब्रह्मा और अग्नि के बीच किसी तरह का सन्देह हो गया है।

मिथिला में छिटफुट तरीके से प्राप्त ब्रह्मा की प्रतिमाओं के सम्बन्ध में इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि पूर्वमध्यकाल में इस परिक्षेत्र में ब्रह्मा की पूजा का विधान सम्मानजनक रहा था, क्योंकि इस इलाके में ब्रह्मा की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ मिली हैं। पूर्वमध्यकाल में ब्रह्मा की पूजा का प्रमाण वैशाली से प्राप्त ब्रह्मा की दो प्रतिमा, प. चम्पारण के सहोदरास्थान से प्राप्त एक खण्डित प्रतिमा, मधुबनी के मैबी (चित्र संख्या-1) से प्राप्त एक प्रतिमा, दरभंगा के भच्छी से प्राप्त अभिलेखयुक्त प्रतिमाओं (चित्र संख्या-1 की प्राप्ति के आधार पर यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि अन्य देवी-देवताओं की तरह समान रूप से ब्रह्मा की पूजा भी उन दिनों की जाती थी। यह शोध का विषय है कि आखिर ऐसी कौन सी परिस्थिति बनी कि वर्तमान समय तक आते आते बहुत ही अपमानजनक तरीके से ब्रह्मा की पूजा सबसे अन्त में किया जाता है।

सबसे अन्त में ब्रह्मा की पूजा के मिथक को इस आधार पर भी चुनौती दी जा सकती है कि आज भी ब्रह्मा की पूजा मन्दिरों में होती है। मन्दिर में ब्रह्मा की पूजा अर्चना की बात पुष्कर के अलावा दरभंगा के भच्छी स्थित एक शिव मन्दिर में भी देखने को मिली। भच्छी के शिव मन्दिर में ब्रह्मा की यह प्रतिमा तीन मुखी और चतुर्भुजी है। (चित्र सं. 2) यहाँ ब्रह्मा का अंकन बड़ा ही अनुपम रूप में किया गया है जो आसन मुद्रा में हैं। प्रलम्ब बाये हस्त में कमण्डल है। यहाँ दाढ़ीयुक्त ब्रह्मा को एकमुखी दिखाया गया है। इस प्रतिमा का बाया पैर आसन पर स्थित है जबकि दाहिना पैर लटका हुआ है। ब्रह्मा के वाहन के रूप में हंस का अंकन किया गया है जबकि ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी का

चित्रण नहीं किया गया है। दरभंगा जिले के मन्दिर में पूजित ब्रह्मा की यह प्रतिमा अभिलेख युक्त है। यह अभिलेख मुख्यतः संस्कृत भाषा और तिरहुता लिपि में है। कुछ वर्ष पूर्व इस प्रतिमा को देखने गया था, शिव मन्दिर में रखी हुई यह प्रतिमा फूलों से लदे होने के कारण पहचान में नहीं आ रहे थे, ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रतिमा की साफ सफाई लम्बे समय से नहीं की गयी थी, प्रतिमा को साफ करके अभिलेख को पढ़वाया गया। साफ होने पर यह स्पष्ट हुआ कि अभिलेख में अक्षरों के कुछ अंश टूट गये हैं। बनाबट की दृष्टि से ब्रह्मा की यह प्रतिमा बारहवीं शताब्दी की प्रतीत होती है। चम्पारण से पूर्णिया तक के फैले विस्तृत क्षेत्र में ब्रह्मा की यह प्रतिमा अभिलेखयुक्त होने के कारण विशिष्ट हो जाती है।

दरभंगा के भच्छी स्थित उपर्युक्त ब्रह्मा से अलग मधुबनी जिलान्तर्गत झंझारपुर अनुमंडल में अन्धराठाढ़ी-मधेपुर मुख्य सड़क पर अरड़िया संग्राम के निकट मैबी नामक एक प्राचीन ग्राम में तपनेश्वर नाथ मन्दिर परिसर में भैरव मन्दिर में चतुर्भुज एवं तीनमुखी ब्रह्मा की एक छोटी सी मूर्ति पूजित अवस्था में है। (चित्र संख्या-1) यह गाँव मध्यकाल में ओइनवार के प्रसिद्ध राजा शिवसिंह से सम्बन्धित माना जाता है। ब्रह्मा की यह प्रतिमा लक्षणानुसार पद्मासनस्थ है। इस प्रतिमा के मुख काफी घिसे हुए प्रतीत होते हैं फिर भी मूर्ति के मुँह की बनावट स्पष्ट है। पद्मासनस्थ मूर्ति के अगले चारों हाथ स्पष्ट हैं लेकिन उनके आयुध अस्पष्ट हैं किंतु दण्ड, श्रुव, कमण्डलु-जैसी वस्तुओं का आभास होता है। वाहन के रूप में हंस बाँये मुख किये स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। नीचे द्विदलीय कमलासन के अंकन का आभास परिलक्षित होता है।

19 जून 2020 को दरभंगा जिला के मनमा (जाले) गाँव से एक खंडित प्रतिमा की प्राप्ति हुई थी। (चित्र संख्या–3) इस खण्डित प्रतिमा में मात्र सिर और मुकुट है, चेहरे से नीचे का भाग टूटा हुआ है। पहली बार इस प्रतिमा अंश को देखने पर ब्रह्मा और सदाशिव के बीच संशय बना। इस त्रिमुख के एक मुकुट खंडित हैं, बाँकी के दोनों मुकुट को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक मुख खण्डित है, दूसरा मुख बिना मूँछ-दाढ़ी का है जबकि तीसरा मुख मूँछ-दाढ़ी युक्त है। सामने वाले मुख के चेहरे पर त्रिनेत्र की जगह चन्दन [टीका(U)] स्पष्ट है, जो इन्हें ब्रह्मा के साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में प्रमाणित करता है। ब्रह्मा के चेहरे में दाढ़ी, विष्णु के चेहरे में चन्दन दिख रहा है लेकिन शिव का चेहरा खण्डित है, इसलिये संशय है।

इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि इसमें भी कीर्तिमुख का अंकन किया गया है। इस क्षेत्र में कीर्तिमुख युक्त ब्रह्मा भच्छी, वैशाली, मनमा से मिली है। बारहवीं शताब्दी में भारतीय मूर्तिकला में कीर्तिमुख युक्त ब्रह्मा मिलने लगती है, जो कर्णाट और सेन कालीन मूर्तिकला की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उत्तरी बिहार के अतिरिक्त कीर्तिमुख युक्त ब्रह्मा मद्रास म्यूजियम, चेन्नई, इंडियन म्यूजियम, कोलकाता के अलावा वी. आर. म्यूजियम, राजशाही, बंगलादेश में देखे जा सकते हैं। मनमा से प्राप्त ब्रह्मा का कीर्तिमुख का चेहरा एक अच्छे बिम्ब को प्रदर्शित करता है।

पूर्वमध्यकालीन पूर्वी भारतीय मूर्तिकला शैली में कीर्तिमुख का अंकन एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है जो पाल-सेन कला की विशेषता को दर्शाता है। साजिद बिन डोज़[32] ने पाल मूर्ति से सम्बन्धित अपने एक आलेख में बंगला देश में पाल मूर्तिकला के कलात्मक प्रवृत्ति पर जानकारी दी है। उन्होंने लिखा है कि 'गुप्तशैली के बाद पालों ने अपनी अलग शैली विकसित की। गुप्तकालीन मूर्तिकला में संशोधन किये गये। बंगला देश और पश्चिम बंगाल में बनाई गई अधिकांश मूर्तियाँ राजमहल के काले बेसाल्ट पत्थर हैं। 11वीं शताब्दी में कलाकारों ने जीवन्त प्रतिमाओं का

32. Doza-sajid-bin, Pala Sculptures' : a highly sophisticated aesthetic taste which greatly influenced the art architecture of bengal, brac university journal, vol. X no. 1&2, 2013, pp. 1-11

निर्माण किया। 10 वीं शताब्दी में कांस्य की प्रतिमा भी बनी और 12 वीं शताब्दी तक बनती रहीं। पाल प्रतिमाएँ धार्मिक दृष्टिकोण से बनायी गयी हैं। दसवीं शताब्दी के दौरान सम्पूर्ण बंगाल की मूर्तिकला में एक स्थानीय स्कूल का विकास हुआ। यह स्कूल देवपाल औऱ धर्मपाल के शासनकाल में धीमान एवं वितपाल जैसे कलाकारों के द्वारा दो स्कूल बनाया गया। उनका कहना है कि मुख्य देवता की आकृति का प्रभामण्डल बदल दिया गया। बारहवीं शताब्दी की मूर्तियाँ नरम, अर्द्ध निमीलित नेत्र, तीक्ष्ण विशेषताओं से युक्त हैं जो बंगाली शैली का नमूना है। पाल प्रतिमा में धीमान और वितपाल जैसे मूर्तिकार ने स्थानीय स्तर पर आमतौर से अनुपात के अनुसार निर्माण किया गया। इन्होंने चित्र संख्या तीन में गंभीर रूप से पाल घटक के पहचान के लिए एक मूर्ति को रखा है। साजिद जी ने कुछ अपवादों के साथ गुप्त और पाल मूर्ति से अलग स्टेला के स्वरूप, शारीरिक प्रकार एवं अनुपात, चेहरे की विशेषता, भौह आदि कुछ अंतरों को स्पष्ट किया है।' साजिद बिन डोज़ के आलेख में 9वीं शताब्दी पर ज्यादा जोर दिया गया है। इन्होंने पाल घटक के पहचान के लिए जो चित्र दिया है उसमें स्टेला त्रिआयामी स्वरूप में कीर्तिमुख के साथ दिखाई देता है। यह कीर्तिमुख बारहवीं के मूर्तियों की एक मुख्य विशेषता है। स्टेला पर कीर्तिमुख की उपस्थिति को कला इतिहासकार 12 वीं शताब्दी का मान रहे हैं, जबकि गौरीस्वर भट्टाचार्य[33] प्रतिमाओं पर कीर्तिमुख अथवा ग्रास की उपस्थिति सातवीं शताब्दी में भी मानते हैं लेकिन बाद के काल में ये भी 12 वीं शताब्दी में ही कीर्तिमुख की उपस्थिति को स्वीकारते हैं। भट्टाचार्य के अनुसार कीर्तिमुख की उपस्थिति पूर्वी भारतीय कला में देवपाल के काल में बुद्ध मूर्तियों के साथ शुरू हुआ। एक उदाहरण के द्वारा इसे वासुदेव-विष्णु प्रतिमा के रूप में समझा जा सकता है। बौद्ध मूर्तियों से सम्बन्धित पुस्तक "साधनमाला" में कीर्तिमुख को बौद्ध देवी के रूप में कोई जानकारी नहीं है। पद्मपुराण, उत्तरखण्ड कीर्तिमुख की उपस्थिति शिव मन्दिर के सन्दर्भ में देता है, शिवमूर्तियों में भी कीर्तिमुख है, 11वीं-12वीं शताब्दी की (प्लेट 28.13 में द्रष्टव्य) विष्णु प्रतिमाओं में कीर्तिमुख की उपस्थिति है, लेकिन इसके समन्वय से सम्बन्धित पौराणिक ग्रन्थों की जानकारी नहीं है।

कीर्तिमुख की आकृति मुख्यतः बहुलता के साथ उत्तरी बिहार के अलावा बंगला देश के पहाड़पुर, दिनाजपुर, राजशाही में भी दिखाई देती है। कीर्तिमुख के सम्बन्ध में लोगों को ज्यादा जानकारी नहीं है। कीर्तिमुख को अक्सर दक्षिण भारत में मन्दिरों के साथ-साथ घरों की दीवालों पर भी देखा जाता है। इसकी आकृति डरावना है। काल और परिस्थिति के सापेक्ष कीर्तिमुख की पूजा प्रचलित हो गई। वस्तुतः कीर्तिमुख एक दानव प्रतिकृति है, जो प्रतिमा निर्माण के क्रम में देवताओं से भी ऊपर बनाया जाता है।

क्लाउडीन ने ब्रह्मा इन पाल-सेन स्टोन स्कल्पचर[34] में वी. आर. संग्रहालय, राजशाही, ढाका संग्रहालय, मद्रास संग्रहालय, इंडियन म्यूजियम, कोलकाता-जैसे जगहों से प्राप्त ब्रह्मा प्रतिमा के बारे में जानकारी दी है। क्लाउडीन के मूर्ति संख्या 3, 5, 6 में कीर्तिमुख भी स्टेला के ऊपरी हिस्से में दिखाई देता है। कीर्तिमुख के आधार पर मिथिला एवं बंगाल से प्राप्त ब्रह्मा की प्रतिमाओं के शैलीगत अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि कीर्तिमुख युक्त जिन त्रिआयामी ब्रह्मा प्रतिमाओं को कला इतिहासकार के द्वारा पाल सेन कला के अन्तर्गत रखा गया है, मेरी दृष्टि में वे मूलतः पालों के बाद सेन काल में प्रचलित नहीं हुए बल्कि पालों के समय कर्णाट शासनकाल में ही प्रचलित होने शुरू हो गये थे। तत्कालीन राजनीतिक घटनाक्रम एवं सांस्कृतिक विविधता में इस तरह की विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकता है।

33. Bhattacharya G., Pancavaktra or Kirtimukha or Grasa, Recent Researches in Indian Art and Iconography, N Delhi, 2008, pp. 174-182
34. Picron Claudine, Brahmā in Pāla-Sena Stone Sculpture, Oriental Art, Londres, vol. XXX, 1, 1984, pp. 93-99

(चित्र सं. 4) सिमरौन गढ़, नेपाल से प्राप्त ब्रह्मा के तीन रूप

चित्र सं. 5 :
चित्र संख्या 6 में एक रूप का आवर्द्धित चित्र

मिथिला की कर्णाटकालीन राजधानी सिमरौनगढ़ (नेपाल) से भी सरस्वती के साथ ब्रह्मा की 3 आकृतियाँ एक साथ मिली है। (चित्र सं. 4) इनमें एक आकृति (चित्र सं. 5) के नीचे अभिलेख के रूप में “श्रीरस्तु” लिखा हुआ है।

ब्रह्मा की प्रतिमाओं के सन्दर्भ में उपरोक्त विवरण से दो महत्त्वपूर्ण तथ्य उदघाटित होता है कि अन्य देवी देवताओं की तरह ब्रह्मा की प्रतिमाएँ भी पूजा अर्चना के लिए निर्मित की जाती थी और प्रारंभिक मध्य काल में पूर्वी भारतीय कला शैली के अन्तर्गत पाल कला शैली के नींव पर ही एक नवीन कला शैली का विकास कीर्तिमुख, गज-व्याल जैसे तत्त्वों के आधार पर हुआ, जिसका प्रसार कर्णाट एवं सेन शासकों के समय प्रतिमा निर्माण के दौरान प्रमुखता से हुआ।

***

लेखकों से निवेदन

‘धर्मायण’ का अगला भाद्र मास का अंक इस बार सप्तर्षि विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह एवं क्रतु —इन सात ऋषियों के समूह सप्तर्षि कहलाते हैं। इनमें से अनेक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि भी है, स्मृतिकार भी हैं। अंगिरा को तो अथर्ववेद एवं वैदिक तन्त्रविद्या का प्रवर्तक ही माना गया है और आङ्गिरसी विद्या का बहुधा उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त सात मूल वैदिक ऋषि वे हैं, जो ऋग्वेद के मण्डलों के मन्त्रद्रष्टा हैं। ऐसी संभावना भी बनती है कि प्रारम्भ में सप्तर्षि की कल्पना उसी आधार पर की गयी हो लेकिन बाद में सूत्रकाल में मरीचि आदि सप्तर्षि माने गये हों। आकाशमण्डल में भी सप्तर्षि के नाम से नक्षत्रों के दो समूह भी हैं- सप्तर्षि एवं लघु सप्तर्षि। ये सप्तर्षि भारतीय ऋषि-परम्परा के प्रवर्तक हैं। इनमें से वसिष्ठ, अंगिरा, अत्रि तथा पुलस्त्य पौराणिक कथाओं में भी बार-बार चर्चित हुए हैं, किन्तु पुलह एवं क्रतु पर अत्यल्प सामग्री ही प्रकाश में आयी है। अतः इनकी ऋषि-परम्परा प्रबुद्ध पाठकों के लिए पठनीय है। इन विविध विषयों को पर विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं।

***

विभिन्न पुराणों में उल्लिखित रामकथा
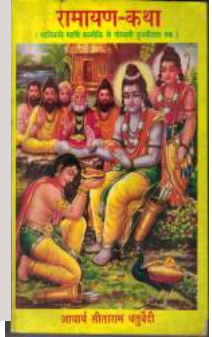
आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

- प्रधान सम्पादक

पुराणोंमें रामायण-कथा संक्षेप में या विस्तारसे प्रायः सभी पुराणों में राम -कथा प्राप्त होती है। नीचे उनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है जिससे रामायणका अध्ययन करनेवालों को सुविधा हो

ब्रह्मपुराण

1. अध्याय 34 से अध्याय 39 तक सतीका आख्यान, शिव-सती संवाद, सती-स्वयंवर, शिव-सती-विवाह, मदन-दहन, रतिको शिवका वरदान, दस-यज्ञ होनेपर शिव-सती संवाद, वीरभद्र-द्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस, कुद्ध गणेशके ललाटके पसीनेकी बंदसे उत्पन्न अग्निके द्वारा यज्ञका विध्वंस, शिवको यज्ञ-भागकी प्राप्ति, दज्ञको शिवका वरदान ।

2. अध्याय 71 से 76 तक गंगाकी उत्पत्ति, शम्भू-विवाह, गौरीके रूप-दर्शनसे स्खलित ब्रह्माके वीर्यसे बालखिल्योंकी उत्पत्ति, शिवसे ब्रह्माको कमंडल-अप्ति, बलि और वामनावतारके प्रसंगके साथ-साथ गंगाका शिवकी जटाओं में प्रवेश, गंगाके दो रूपोंका वर्णन, गौतमका गौवध-पाप और उसी पापसे मुक्ति काभ, गंगा प्रार्थना, पन्द्रह आकृतियों में गंगाका निर्गमन ।

3. अध्याय 84 में केसरी वानरका दक्षिण समुद्रपर जाना, अन्जना और भद्रिकासे पुत्रोंका जन्म।

4. अध्याय 86 में अहल्याको पानेके लिये गौतमका पृथ्वीपर विचरण, अहल्या-इन्द्र संवाद, इन्द्र और अहल्याको गौतमका पाप, अहल्याका अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लेना।

5. अध्याय 97 में रावणका कुबेरको हरा देना।

6. अध्याय 123 में रामतीर्थक वर्णनके साथ रामचरितका वर्णन ।

7. अध्याय 157 में किष्किन्धा तीर्थकी महिमाके साथ रावणका वध करनेके अनन्तर रामका गौतमी (गोदावरी)-के पास लौट आनेका वर्णन।

8. अध्याय 176 में देवताओंके साप रावणका युद्ध और राम तथा रावणके युद्धका वर्णन।

9. ब्रह्मपुराणकी बम्बईवाली प्रतिमें रामतीर्थक वर्णनके प्रसंगमें देव-दानव संग्राम, देव-दानवोंका दशरथके पास आगमन, दशरथ-द्वारा देवताओंकी सहायता, उस युद्धमें कैकेयी-द्वारा दशरथकी सहायता, दशरथके हाथसे मुनि श्रवणके पुत्रकी मृत्यु, मुनि और उसकी पत्नीके मरण, राम आदिके जन्म, दशरथके द्वारा विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणको भेजने, अहल्याके उद्धार, राक्षसोंके वध, सीतासे विवाह, दशरथका मरकर नरकमें जाने और वहाँसे मुक्त होने तथा राम-लक्ष्मण और दशरथके संवाद आदिका भी वर्णन है। साथ ही रावणके द्वारा कैलासको उठाने, रावणको मारकर राम आदिका सपरिवार अयोध्या जाने, लोकापवादके भयसे रामका सौताको लक्ष्मणके साथ वाल्मीकिके आश्रममें छड़वाने, रामके अश्वमेध यज्ञमें लव-कुशके जाने, अंगद आदिका द्वारपालोंसे सीताके परित्यागका कारण पूछने, रावणके वधके अनन्तर गोदावरी. तटपर आकर रामके विश्राम, वहाँ शिवलिंगकी पूजा, वहाँसे जाते समय उस शिवलिंगको विसर्जन करनेके लिये रामका हनुमान्को आदेश, उस शिवलिंगको न उखाड़ सकनेके कारण राम-द्वारा हनुमानको लिंगनमस्कारकी विधि बताने आदिका वर्णन है।

इस प्रकार ब्रह्मपुराणमें बड़े अव्यवस्थित और अक्रम ढंगसे रामायणकथा बिखरी हुई मिलती है।

पद्मपुराण

पद्मपुराण में रामायणकथासे सम्बद्ध निम्नांकित विवरण मिलते है

1. सृष्टि-खण्डके अध्याय 5 में दक्षयज्ञ-विध्वंसकी कथा है।

2. इसी खण्डके अध्याय 6 में सम्पाति और जटायुके जन्मका वृत्तान्त है।

3. शिव-द्वारा अध्याय 14 में एक सिर काटनेसे सूट ब्रह्माके पसीने से उत्पन्न और विष्णकी मजाके रस से उत्पन्न पुरषोंक पर बूट में प्रमशः बाली और सुग्रीवकी उत्पत्तिका वर्णन है।

4. अध्याय 24में वीरभद्रकी उत्पतिकी कथा है।

5. अध्याय 28में रामका रेवा-गमन ।

6. अध्याय 32 में राम-द्वारा शूद्रक के बधकी कथा।

7. अध्याय 33में राम-अगस्त्यके संवाद में प्रतिग्रहके लिये अत्रियों अधिकारका वर्णन है।

8. अध्याय 30 में हिमालय में पार्वतीका जन्म और उनके विवाहका वर्णन है।

9. अध्याय 41 में कार्तिकेयके जन्म और तारकासुरके वधकी कथा।

10.अध्याय 51 में अहल्याकी कथा।

11. अध्याय 56 में सेतुबन्धकी कथा।

12. स्वर्ग खंडके अध्याय 16 में भगीरथके जन्म और गंगाको पृथिवीपर होनेकी कथा

13. पाताल खंडके अध्याय 1 से 68 तक पूरा राम-चरित है। इसी खंडके अध्याय 56 में धोबी-धोबिनके संवादको सुनकर रामके द्वारा अभिणी सीताकै परित्यागका वर्णन है।

14. इसी खंडके अध्याय 100 में रामचरित-निरूपणके प्रसंगमें शिक्का राम-मन्दिर (रामके भवन) में जाने, रामका विभीषणके बाँधे जाने की कथा सुनने और विभीषणके मोचनकी कथा है।

15. राम-जाम्बवन्त संवादके प्रसंग (जाम्बवत् रामायण में पहले कल्पके रामायणकी कथाका वर्णन है।

16. उत्तर खंडके अध्याय 268 में परशुराम-चरित है।

17. इसी खंडके अध्याय 268 से 271 तक रामके जन्मसे लेकर उनके परलोक-गमनका वर्णन है।

विष्णपुराण

1. विष्णुपुराणके अंश 4 के अध्याय 4 में भगीरथ-द्वारा गंगाको लाने और राम आदिके जन्मकी कथा है।

2. इसी अंशके अध्याय 5 में सीताकी उत्पत्तिकी कथा है।

शिव-पुराण

1. शिवपुराणमें रुद्रसंहिताके द्वितीय सती-खंडके अध्याय 14 में शिवसतीके जन्मकी कथा है।

2. अध्याय 19 में सती-शिव-विवाहका वर्णन है।

3. अध्याय 24 से अध्याय 43 तक शिव-द्वारा रामको प्रणाम करते देखकर सतीके मनमें सन्देह होनेपर सीताका रूप बनाकर उनकी परीक्षा लेने जाने आदिसे लेकर सतीके देहत्याग और दक्ष यज्ञ-विध्वंस-तककी सारी कथा आ गई है।

4. शिवपुराणमें रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वती-खंडमें अध्याय 3 से अध्याय 55 तक पार्वतीके जन्म, मदन-दहन, शिवसे विवाह आदि सब घटनाओंका विस्तारसे वर्णन है।

5. शिवपुराणमें शतरुद्रसंहिताके अध्याय 20 में हनुमान्के जन्मकी कथा है।

6. शतरुद्र-संहिताके अध्याय 33 में शिवको पति रूपमें प्राप्त करने के लिये पार्वतीके तप, पार्वतीको प्राप्त करनेके लिये शिवका नर्तकके रूपमें हिमवान के पास पहुँचकर पार्वतीकी याचना, हिमवान्के पास साधु ब्राह्मणके रूपमें जाकर शिवके कहने कि किस अज्ञात कुलशीलके साथ अपनी कन्याका विवाह कर रहे हैं, आदिका वर्णन है।

श्रीमद्भागवत महापुराण

श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धके अध्याय 9 में भगीरथ-द्वारा गंगाको पृथिवीपर लानेकी कथा है।

अध्याय 10 में रामके अवतार और संक्षेपमें राम-चरितका वर्णन है।

अध्याय 11 में रामराज्यका, रामके यज्ञोंका, राम-द्वारा शत्रुघ्नको लवणासुरका वध करनेको भेजने और शत्रुघ्न-द्वारा मथुरा बसानेका वर्णन है।

अध्याय 13 में जनक आदिके जन्मका वर्णन है।

वायु-पुराण

वायुपुराणके अ0 88 में रामचरितका और अध्याय 89 में सीताको उत्पत्तिका वर्णन है।

नारदीय महापुराण

नारदीय महापुराणके अध्याय 76 में संक्षेपसे राम-लक्ष्मणके चरितका वर्णन करके रामके आदेशसे लक्ष्मणाचलपर जाकर योग-विधिसे लक्ष्मणके शरीर-त्यागका वर्णन है।

अग्निपुराण

अग्निपुराणमें अध्याय 5 से 11 तक क्रमशः बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड नामोंसे पूरी रामकथा विस्तार और क्रमसे दी गई है।

ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्डपुराणमें जो रामकथा आई है वही अध्यात्मरामायणके नामसे प्रसिद्ध है। यह प्रारम्भमें दी जा चुकी है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण

गणपतिखण्डके अध्याय 1 में पार्वतीकी उत्पत्ति, शिवसे उनके समागम, उनके भू-पतित तेजसे स्कन्दकी उत्पत्तिका वर्णन है।

वराहपुराण

अध्याय 12 में चित्रकूटपर आकर रामस्तवन करनेसे दुर्जयकी मुक्ति तथा अध्याय 21 और 22 में गौरीकी उत्पत्ति और शिवसे उनके विवाहका वर्णन है।

अध्याय 45 में दशरथ-द्वारा ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीको रामद्वादशीका व्रत रखने से दशरथको राम आदि चार पुत्रोंकी प्राप्तिका वर्णन है ।

स्कन्दपुराण

पार्वतीके जन्म और विवाहकी और विश्वामित्रके माहात्म्यकी कथाके साथ रामायणका भी वर्णन है।

मार्कण्डेयपुराण

अध्याय 53 में गंगावतारकी कथा है।

वामनपुराण

अध्याय 51 में भिक्षक-रूपधारी शिवका पार्वतीले संवाद वर्णित है। अध्याय 52 और 53 में पार्वतीके साथ शिवके विवाहका वर्णन है।

कूर्मपुराण

पूर्वार्द्धके अध्याय 21 में इक्ष्वाकुवंशके वर्णन के प्रसंगमें संक्षेपसे रामचरितका भी वर्णन है।

मत्स्यपुराण

अध्याय 199 में वशिष्ठ-वंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंका और अध्याय 200 में वशिष्ठको पुरोहित बनाकर निमिके अनेक यज्ञ करानेका वर्णन है।

गरुडपुराण

गरुडपुराणमें भी रामायणको कथा है।

नृसिंहपुराण

अध्याय 47 से 22 तक रामकथा है।

देवीभागवतपुराण

इस पुराणके तृतीय स्कन्धक 283 और 29वें अध्यायमें रामायणकथा दी गई है।

लिङ्गपुराण

अध्याय 99 से 102 तक सतीको कथा, दक्षके यज्ञ-विध्वंसका वर्णन, पार्वतीके जन्म और उनकी तपस्या, मदन-दहन और शिव पार्वतीक विवाहका वर्णन है।

भविष्यपुराण

भविष्यपुराणके उत्तरार्द्धके तृतीय अध्याय, नारदको विष्णुको मायाका दर्शन वर्णित है।

***

श्री विजयदेव झा

झारखण्ड के जगन्नाथ स्वामी

भगवान् जगन्नाथ केवल एक मन्दिर में नहीं बल्कि जन-मानस में विराजते हैं, अतः भक्तों ने जहाँ चाहा, दर्शन की सुविधा के लिए मन्दिर बना दिया। झारखण्ड में चार जगन्नाथ मन्दिर हैं— राँची, बोकारो, सीतागढ़ (हजारीबाग) और पालगंज, जहाँ की परम्परा मूल मन्दिर, पुरी के समान हैं। बोधगया में भी एक जगन्नाथ मन्दिर 18वीं शती का बना हुआ है। पिछले जगन्नाथ-विशेषांक में बोधगया एवं पालगंज के मन्दिरों पर विवरण हम प्रकाशित कर चुके हैं। इस अंक में वरिष्ठ पत्रकार की लेखनी में प्रामाणिक विवरण के साथ राँची के भगवान् जगन्नाथ स्वामी पर आलेख प्रस्तुत है।

झारखण्ड राज्य के राँची जिला मुख्यालय से 11 किलोमीटर दूर अवस्थित जगन्नाथपुर इलाके का माहौल कुछ अलग-सा ही है। लोग एक दूसरे को अभिवादन में जोहार के साथ साथ 'जय जगन्नाथ' भी कहते हैं। इलाके के बहाबुरु पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित भगवान् जगन्नाथ का विशाल मन्दिर और मन्दिर के गुम्बद पर फहराता ध्वज काफी दूर से ही श्रद्धालुओं को दिख जाता है। 'बहाबुरु' मुंडारी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'फूलों का पहाड़।' मन्दिर से महज 800 मीटर दूर भगवान् जगन्नाथ, भाई भगवान् बलभद्र और बहन सुभद्रा की मौसी गुडिचा देवी का मन्दिर है, जिसे 'मौसी बाड़ी' कहते हैं।

स्थानीय निवासी शिवेश कुमार सिंह जो मन्दिर के मेला प्रबन्धन समिति से जुड़े हुए हैं कहते हैं "यहाँ सब कुछ जगन्नाथमय है। इस बृहत् क्षेत्र का नाम भी भगवान् के नाम पर है; यहाँ तक कि यह गाँव जहाँ, यह भव्य मन्दिर है, इस गाँव का नाम लोग मौसी बाड़ी के रूप में ही जानते हैं। अगर पुरी में अवस्थित भगवान् जगन्नाथ के आराधना की आपकी लालसा अपूर्ण रह गयी हो, तो इस मन्दिर में भगवान् की पूजा अर्चना दर्शन करिये। यहाँ भी भगवान् जगन्नाथ विराजमान हैं। सब कुछ वही है। बन्द और खुले आँख दोनों में ही आपको पुरी का ही अनुभूति मिलेगा।"

यहाँ भी वही वैदिक अनुष्ठान, दैन्यदिन कर्मकाण्ड एवं रथयात्रा में उसी पद्धति का अनुसरण किया जाता है, जो पुरी के मन्दिर के लिए विहित है। पुरी मन्दिर की तरह ही यहाँ भी भगवान् की मूर्तियाँ नीम के लकड़ी की बनी हुई है। मन्दिर का स्थापत्य भी मूल मन्दिर की अनुकृति है।

*C/o रामदेवझा, गायत्री भवन, विद्यापतिनगर, कांके रोड, राँची, झारखण्ड। संपर्क: 9470369195. लेखक पेशे से पत्रकार हैं और वर्तमान में प्रतिष्ठित अंग्रेजी अखबार 'दी पायोनियर' में विशेष संवाददाता के रूप में झारखण्ड में कार्यरत हैं। धर्म, दर्शन एवं मिथिला के इतिहास के अध्ययन और गवेषण में इनकी विशेष विशेष रुचि है।

इस मन्दिर का निर्माण बड़कागढ़ रियासत के महाराज 1691 ई० में राजा एनी नाथ शाहदेव ने मन्दिर का निर्माण कराया था। सम्भवतः इस मन्दिर और विग्रहों की प्राण प्रतिष्ठा 25 दिसम्बर के दिन हुई होगी क्योंकि साल में दो अवसर क्रमशः रथयात्रा के दिन और 25 दिसम्बर को मन्दिर में सामूहिक व बृहत् रूप में विष्णुसहस्रनाम का पाठ व विशेष पूजा सम्पन्न किया जाता है। किंवदन्ती है कि राजा एनी नाथ अपने एक वनवासी सेवक ओरांव को संग लेकर भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने पुरी जाया करते थे। एकबार किसी कारणवश नहीं जा पाए, जिसका उन्हें गहरा अवसाद हुआ। तब भगवान् ने उन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि वह भी उनकी स्थापना कर मन्दिर निर्माण करावें।

1990 ई० में ढाँचा गिरने के बाद बिहार सरकार के सहयोग से 1992ई० में पुनर्निर्मित

इस मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ 1917 ई० में प्रकाशित एमजी हैलेट की लिखी हुई राँची जिले की गजट के पृष्ठ 249 पर दर्ज है— "राँची से छह मील दक्षिण पश्चिम दूर अवस्थित जगन्नाथपुर, बड़कागढ़ एस्टेट का एक गाँव है, जहाँ इस जिले का सबसे विशाल मन्दिर है। यह एक ऊँचे चट्टानी पहाड़ पर अवस्थित है, जहाँ से नजदीकी पठारों का विस्तृत नजारा देखा जा सकता है। यह मन्दिर पुरी के मन्दिर के तर्ज पर ही बना हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण संवत् 1748 (अंग्रेजी साल 1691 ई०) में ठाकुर एनी नाथ द्वारा कराया गया, जो नागवंशी परिवार के खोरपोशदार (अधीन) थे। इस गाँव को देवोत्तर के रूप में भगवान जगन्नाथ को समर्पित कर दिया गया। मगर 1857 ई० के विद्रोह के दौरान एस्टेट के मालिकों के द्वारा विद्रोहियों को सहायता करने कारण सरकार ने इस रियासत को जब्त कर लिया, अब पुजारियों के नियुक्ति और बर्खास्तगी डिप्टी कमिशनर के पास है। यहाँ पर रथ यात्रा का आयोजन किया जाता है जहाँ पर जिले के हिस्सों से हजारों लोग जुटते हैं। भगवान की मूर्ति को लकड़ी के भारी भरकम गाडी में रख कर इसे फूल और चमकीले पन्नियों से सजाकर मुख्य मन्दिर से छोटे चट्टान पर अवस्थित दूसरे छोटे मन्दिर तक ले जाया जाता है जो दो सौ से तीन सौ यार्ड दूर है। भगवान उल्टा रथ (वापसी रथ) आयोजित होने तक यहाँ सात दिनों तक निवास करते हैं। इस त्यौहार के साथ मेला का भी आयोजन होता है जहाँ कपड़ा, गहना और अन्य तरह की वस्तु बेचने वाले इस पहाड़ की तलहटी में जमा होते हैं।"

The temple of Jagernath near Ranchi

1940ई० में प्रकाशित पुस्तक "बिहार द हार्ट ऑफ इंडिया" (सर जॉन हॉल्टन) में प्रकाशित मन्दिर का चित्र

वह थे शहीद ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव, जिन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार के खिलाफ सशस्त्र क्रान्ति किया था, जिन्होंने छोटानागपुर में अंग्रेज़ों की कमर तोड़ डाली थी। इस रियासत में कुल 113 गाँव थे, जिसे एक्ट XXV 1857 के तहत जब्त कर लिया गया। इसमें मन्दिर की भी भूमि शामिल थी। स्थानीय निवासी कहते हैं कि देवोत्तर में तीन गाँव की भूमि क्रमश: आमी, भुशुर एवं जगन्नाथपुर की भूमि भगवान् को समर्पित की गयी थी। उस समय मन्दिर के मुख्य पुजारी बैकुण्ठ नाथ तिवारी ने देवोत्तर भूमि की वापसी के लिए ब्रिटिश सरकार से गुजारिश की थी, जिसके बाद ब्रिटिश सरकार ने जगन्नाथपुर गाँव की 859 एकड़ भूमि देवोत्तर भूमि चिह्नित करते हुए वापस कर दिया। लेकिन आज देवोत्तर के रूप में मात्र 41 एकड़ 27 डिसमिल भूमि बची हुई है। शेष भूमि कहाँ गयी, यह रहस्य है और इसके साथ कई विवाद भी हैं।

परन्तु एनी नाथ शाहदेव ने जिस श्रद्धा के साथ इस मन्दिर की स्थापना की थी जिस परम्परा और समावेशी संस्कृति का प्रारम्भ किया था वह आज भी अक्षुण है।

भगवान जगन्नाथ वनवासियों (आदिवासियों) के भगवान् कहे जाते हैं और यह मन्दिर वनवासी बहुल झारखण्ड में अवस्थित है। मन्दिर के पट सभी जाति वर्ग के श्रद्धालुओं के लिए खुले रहते हैं। रथयात्रा महज एक धार्मिक उत्सव ही नहीं, वरन् सनातन धर्म के समावेशी प्रकृति का उदाहरण है। रथ-निर्माण, मरम्मत और रंग रोगन का जिम्मा लोहार और बढ़ई जाति का है तो फूल-पत्र की व्यवस्था करना माली का काम है। रथ के ऊपर ध्वज का आरोहण मुण्डा वनवासी समुदाय के ही भक्त करते हैं। ओरांव वनवासी भक्त मन्दिर का घण्टी बजाकर यात्रा के शुभारम्भ का संकेत करते हैं। कुम्हारों का काम है अनुष्ठान में प्रयुक्त मृद्धाण्ड उपलब्ध कराना, जबकि भगवान के जेवरों की सफाई स्वर्णकार ही करते हैं। कोइरी जाति के लोग विग्रहों को रथ पर सजाते रहे हैं।

इस मामले में राँची का जगन्नाथ मन्दिर पुरी से कुछ भिन्न है। एनी नाथ शाहदेव ने स्थानीय समाज के हरेक वर्ग की सहभागिता की परम्परा स्थापित की थी। यद्यपि सनातन विरोधी विखण्डनकारी शक्तियों के सतत दुरभिसन्धि और टूटते सामाजिक ताने-बाने के मध्य आज सामाजिक सहभागिता की इस परम्परा को बनाये रखना चुनौती भरा है। 1970 ई० मन्दिर रखरखाव और रथयात्रा के संचालन के लिए एक समिति बनी, जिसका दायित्व था मन्दिर और रथयात्रा के सामाजिक सहभागिता की परम्परा को बनाये रखना। स्थानीय लोग मानते हैं कि समिति इसके महत्व को समझ नहीं पायी थी। इसके और भी कारण हैं। गाँव उजड़कर शहर बन गया और इसका एक बड़ा हिस्सा स्लम क्षेत्र बन गया। वहाँ के मूल निवासी दो दर्जन से अधिक परिवार नहीं रह गए हैं। लोग अपनी जातीय पेशा छोड़ रहे हैं।

इस मन्दिर के एक पुजारी रमेश्वर पाढ़ी बताते हैं कि पुरी से भिन्न यहाँ भगवान् का भोजन ब्राह्मण रसोइया ही बनाते हैं। उन्हें नियम निष्ठा और शुचिता का कठोरता से पालन करना होता है। भगवान् को चावल, दाल, सब्जी, सूजी का हलवा, चावल की रोटी आदि का भोग लगता है। शुद्ध घी छोड़कर तेल और डालडा से बनी वस्तुओं का भोग वर्जित है। सब्जी में भी आलू, गोभी, टमाटर, लौआ का प्रयोग वर्जित है। भक्त अपने भगवान् को फल चढ़ा सकते हैं।

भगवान् को प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकाल भोग चढ़ाया जाता है। दर्शन का भी निश्चित समय होता है। ज्येष्ठ मास में 15 दिनों तक भगवान् का दर्शन उपलब्ध नहीं हो पाता है, क्योंकि महास्नान के बाद भगवान् जगन्नाथ का स्वास्थ्य ख़राब हो जाता और वह एकान्तवास में चले जाते हैं। इसी समय भगवान् के विग्रहों का श्रृंगार व रखरखाव होता है। शिवेश मूलतः मिथिला के हैं। वे कहते हैं कि मैथिल होने के कारण उन्हें भी भगवान् का विशेष भक्त होने का सौभाग्य प्राप्त है। “हमलोग उदयनाचार्य व गोविन्द ठाकुर की सन्तति हैं, जिनके लिए भगवान् ने असमय अपने पट खोल दिए था उनके भक्ति की जिद को भी पूरा किया। भगवान जगन्नाथ तो लीलाधारी हैं।”

यह लीला रथयात्रा के क्रम में देखने को मिलती है। परम्परा के अनुसार प्रत्येक साल आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वितीया को भगवान् जगन्नाथ, भ्राता और बहन के साथ मौसी के घर रथारूढ़ होकर पधारते हैं और हरिशयनी एकादशी के दिन अपने गृह लौट आते हैं। इस रथयात्रा की प्रतीक्षा सभी को होती है, जब 40 टन के विशाल रथ को “जय जगन्नाथ” के उद्घोष के साथ लोग खींचते हैं। इस अवसर पर लाखों लोग उपस्थित होते हैं। इस अवसर पर वर्षा होना निश्चित ही होता है। घुरती रथ कार्यक्रम उतना ही मनमोहक होता है। लेकिन इस बार रथ खींचना श्रमसाध्य होता है।

हरमू निवासी पत्रकार राजकुमार झा, जो पिछले कई दशकों से रथयात्रा की रिपोर्टिंग करते आ रहे हैं, वह कहते हैं कि यह भगवान की लीलामात्र है। माता लक्ष्मी इस बात पर नाराज हो जाती हैं कि भगवान अपने भाई और बहन से अधिक स्नेह रखते हैं वह उन्हें अपने साथ ले गए, जबकि माता लक्ष्मी को मन ले जाकर माता की उपेक्षा की। पंचमी के दिन माता चुपके से जाकर रथ के पहिये को क्षतिग्रस्त कर देती हैं। इसलिए वापसी में रथ खींचने में कठिनाई होती है। वह भगवान बलभद्र और देवी सुभद्रा को गृह में प्रवेश करने देती हैं, परन्तु भगवान् के लिए दरवाजा बन्द कर देती हैं। उपालम्भ और मान मनौवल का दौर चलता है। भगवान् अभी गृहस्थ के रूप में हैं और उनके जीवन में भी वैवाहिक खटपट वैसा ही चलता है, जैसा की मनुष्यों के जीवन में। मन्दिर के पुजारी भगवान् और माता लक्ष्मी के बीच संवाद का आदान प्रदान करते हैं। फिर माता लक्ष्मी भगवान को उलाहना देती हैं कि वह गोपियों पर भी प्रेम न्योछावर करते हैं जिस पर भगवान क्रोधित हो जाते हैं। अब भगवान बलभद्र सुलह करवाते हैं वह भगवान जगन्नाथ को क्रोधित होने पर डाँटते हुए कहते हैं की तुम्हें लक्ष्मी को अपने साथ ले जाना चाहिए था। यह पूरा प्रसंग करीब एक घण्टे तक चलता है फिर माता भगवान जगन्नाथ को प्रवेश देती हैं। सारे लोग इस प्रकरण का आनन्द लेते हैं भक्तगण भी माता से गुहार लगाते हैं की मान जाइये।"

यह मन्दिर झारखण्ड के प्रमुख और जागृत तीर्थस्थलों में से एक है जो सनातन परम्परा के सभी पन्थ वैष्णव, शैव, शाक्त, वनवासी का श्रद्धा विन्दु है।

***

पुस्तक समीक्षा

इस स्थायी-स्तम्भ के अन्तर्गत हम धनात्मक विचारधारा की पुस्तककों की परिचयात्मक समीक्षा प्रकाशित करते हैं। सनातन धर्म, भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीयता से सम्बन्धित नव प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा हेतु लेखक पुस्तक की एक प्रति निम्नलिखित पता पर प्रेषित कर सकते हैं— सम्पादक, धर्मायण, महावीर मन्दिर, पटना, पटना रेलवे जंक्शन के निकट, पटना 800001. (समीक्षा हेतु डिजिटल प्रति स्वीकार्य नहीं होगी।)

तत्त्वचिन्तन, लेखक- मार्कण्डेय शारदेय, ISBN-97893-90502-28-8, मूल्य-250.00/ प्रथम संस्करण-2021,

G-65-66, Gali No. - 20,
Rajapuri, Uttam Nagar New Delhi -59
E-mail: sbtpublication@gmail.com
Website : www.sarvbhashatrust. com,
Mob. : +91 81786 95606,
मुद्रक : आर. के. ऑफसेट प्रोसेस, दिल्ली.
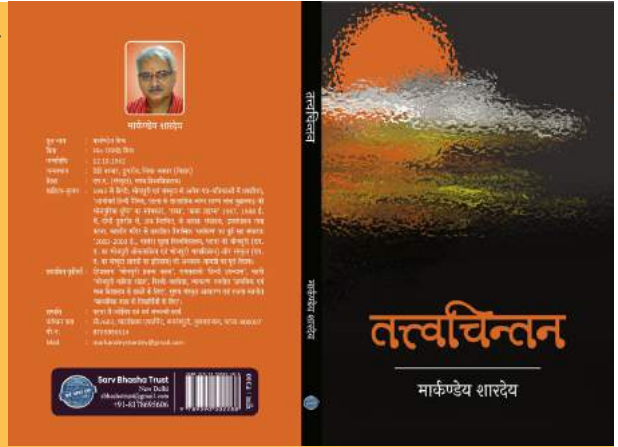
पं० मार्कण्डेय शारदेय की नवीनतर प्रकाशित पुस्तक तत्त्वचिन्तन धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर लिखे गये उनके आलेखों के संकलन हैं। कुल 184 पृष्ठों की इस पुस्तक में 51 आलेख हैं, जिन्हें लेखक ने स्वयं दो भागों में बाँटा है- आरम्भ के 27 आलेख वर्ष भर मनाये जाने वाले पर्वों तथा सामयिक कृत्यों से विवेचन हैं तो आगे के आलेख चिरन्तन चिन्तनपरक हैं, जिनमें भारतीय चिन्तन की प्रासंगिकता तथा उनकी उपादेयता का चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। वे एक आलेख में शुक्राचार्य के द्वारा शराबबंदी का उल्लेख करते हैं, अन्य में माता-पिता की सेवा करने के फलों का विवेचन सरल शब्दों में करते हैं। सभी आलेख छोटे-छोटे हैं किन्तु अपने कथ्य को स्पष्ट करने में वे पूर्ण हैं। लेखक ने विभिन्न पुराणों एवं अन्य सनातन ग्रन्थों से उद्धरण देकर कथ्य को प्रामाणिक तथा स्पष्ट बनाया है। अपनी बात रखने के लिए कहीं-कहीं कहानियों से आलेख प्रारम्भ करना उनकी विशेषता है, जिससे पाठकीयता में वृद्धि हुई है। आलेखों के शीर्षक काव्यात्मक है। जब वे गंगा की वर्तमान स्थिति पर लिखने लगते हैं तो उस आलेख का शीर्षक देते हैं- "रो मत गंगे! रो मत।" इनमें से अनेक आलेख इस पत्रिका धर्मायण में पूर्व प्रकाशित भी हैं, जिन्हें सामान्य पाठकों के लिए संक्षिप्त तथा सरलीकृत कर प्रकाशित किया गया है।

सम्पूर्ण पुस्तक की भाषा तथा शैली आम पाठक को ध्यानमें रखकर निर्धारित की गयी है, अतः यह तत्त्वचिन्त सबी पाठकों को आकृष्ट करेगा ऐसा विश्वास है।

-भवनाथ झा

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार (जुलाई, 2021)

महावीर वात्सल्य अस्पताल में बच्चों के लिए 90 ऑक्सीजन बेड का विशेष वार्ड का उद्घाटन

दिनांक 7 जुलाई, 2021 ई० को महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित बच्चों के सुपर स्पेशियलिटी अस्पताल महावीर वात्सल्य अस्पताल में 90 ऑक्सीजन बेड का विशेष वार्ड बुधवार को शुरू हो गया। माननीय स्वास्थ्यमन्त्री मंगल पांडेय ने फीता काटकर औपचारिक उद्घाटन किया। कोरोना की संभावित तीसरी लहर को ध्यान में रखते हुए महावीर वात्सल्य अस्पताल में इस विशेष वार्ड की शुरुआत की गयी है। नवजात शिशुओं के लिए 30 ऑक्सीजन बेड और बच्चों के लिए 60 ऑक्सीजन बेड की व्यवस्था की गई है। उद्घाटन समारोह में आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि महावीर मन्दिर न्यास के अस्पताल कम खर्च में गुणवत्तापूर्ण इलाज के लिए जाने जाते हैं। महावीर वात्सल्य अस्पताल बच्चों के सुपर स्पेशियलिटी अस्पताल के रूप में देश के दस प्रमुख अस्पतालों में शुमार है। सम्भावित तीसरी लहर में बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका को देखते हुए यहाँ विशेष इंतजाम किए गए हैं।

महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक डॉ एस एन सिन्हा ने बताया कि अस्पताल में पहले से ही बच्चों के लिए 20 वेंटिलेटर बेड हैं। समय से पूर्व जन्मे बच्चों के लिए 20 बेड का अत्याधुनिक वार्ड बनकर तैयार हो चला है। अभी 90 ऑक्सीजन बेड बच्चों को किसी भी परिस्थिति में इलाज के लिए तैयार किए गए हैं। इस मौके पर सहयोगी संस्था "एसोसिएशन ऑफ 41 क्लब्स ऑफ इंडिया" के नेशनल अंबेसडर पद्माशीष प्रसाद ने बताया कि महावीर वात्सल्य अस्पताल समेत देश के दूसरे अस्पतालों में 2.6 करोड़ रुपये की लागत से बच्चों के लिए कुल 215 बेड तैयार किए गए हैं।

शेष आवरण पृष्ठ 2 पर

व्रत-पर्व

श्रावण, 2078 वि. सं. (25 जुलाई - 22 अगस्त, 2021ई०)

1. **श्रावण प्रथम सोमवार, श्रावण कृष्ण द्वितीया,** 26 **जुलाई,** 2021 **ई० सोमवार।**
इस दिन भगवान् शिव की आराधना तथा रुद्राभिषेक महत्त्वपूर्ण माना गया है। बहुत श्रद्धालु इस दिन व्रत रखते हैं। लेकिन पहले दिन यदि व्रत करते हैं तो हर सोमवारी को व्रत करना उचित होगा।

2. **मौना पञ्चमी, श्रावण कृष्ण पञ्चमी,** 28 **जुलाई,** 2021**ई० बुधवार।**
मिथिला, बंगाल, मगध एवं उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में इस दिन नागपूजा मनायी जाती है। कुछ लोग कृष्णपक्ष की पञ्चमी में मनाते हैं, कुछ लोग शुक्ल पक्ष में। जिनके परिवार में जो परम्परा हो, उसी दिन मनायें।

3. **मधुश्रावणी व्रतारम्भ (मिथिला), श्रावण कृष्ण पञ्चमी,** 28 **जुलाई,** 2021**ई० बुधवार।**
मिथिला, बंगाल एवं उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में विवाह के पहले वर्ष नयी दुल्हन अपने मायके आकर इस दिन से 13 दिनों तक चलने वाली नाग-पूजा का अनुष्ठान आरम्भ करती है।

5. **श्रावण द्वितीय सोमवार, श्रावण कृष्ण नवमी,** 2 **अगस्त,** 2021**ई० सोमवार।**

6. **कामदा एकादशी, श्रावण कृष्ण एकादशी,** 4 **अगस्त,** 2021**ई०** (सबका), **बुधवार।**

7. **श्रावण तृतीय सोमवार, श्रावण शुक्ल प्रतिपदा, सोमवार,** 9 **अगस्त,** 2021**ई०, सोमवार।**

8. **मधुश्रावणी व्रत समाप्ति (मिथिला), श्रावण शुक्ल तृतीया,**11 **अगस्त,** 2021**ई०, बुधवार।**

9. **गणेश चतुर्थी, श्रावण शुक्ल चतुर्थी,** 11 **अगस्त,** 2021**ई० बुधवार।**

9. **नागपञ्चमी, श्रावण शुक्ल पञ्चमी,** 13 **अगस्त,** 2021**ई० शुक्रवार।**
इस दिन नागपूजा का वही अनुष्ठान होता है, जो कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि को होता है। इसे मगध क्षेत्र में नगपाँचो कहा जाता है।

10. **तुलसी-जयन्ती, श्रावण शुक्ल सप्तमी,** 15 **अगस्त,** 2021**ई० रविवार।**
इस दिन परम्परागत रूप से गोस्वामी तुलसीदास की जयन्ती मनायी जाती है। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है- संवत सोलह सै असी, असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

11. **श्रावण चतुर्थ सोमवार, श्रावण शुक्ल नवमी,** 16 **अगस्त,** 2021**ई० सोनवार।**

12. **विष्णुपदी संक्रान्ति, सिंह संक्रान्ति,** 17 **अगस्त,** 2021**ई०, बुधवार।**
संक्रान्ति का पुण्याह प्रातः 6 बजकर 42 मिनट तक रहेगा।

13. **पुत्रदा एकादशी, श्रावण शुक्ल एकादशी,** 18 **अगस्त,** 2021**ई०** (सबका), **गुरुवार।**

14. **झूलन आरम्भ, श्रावण शुक्ल एकादशी,** 18 **अगस्त,** 2021**ई० गुरुवार।**

15. **रक्षाबन्धन, श्रावणी उपाकर्म, श्रावण पूर्णिमा, संस्कृत दिवस,** 22 **अगस्त,** 2021**ई० रविवार।**
इस दिन पूर्णिमा तिथि सन्ध्या 5 बजकर 20 मिनट तक है। इस दिन भद्रा प्रातः 5 बजकर 45 मिनट तक है, इसके बाद रक्षाबन्धन का पर्व मनाया जाना चाहिए। फिर 10 : 30 से 1 : 30 तक अर्द्धप्रहरा भी वर्जित करना चाहिए।इस रक्षाबन्धन का मन्त्र इस प्रकार है- येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबध्नामि, रक्षे मा चल मा चल।।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान'** प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय **राम-राम, जय सियाराम**, **जय सीताराम**, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगे।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

महावीर मन्दिर के पूर्वी द्वार पर ऑक्सीजन के सिलिंडर। यहाँ जरूरतमंद लोग निःशुल्क प्राप्त करते हैं। कोरोना संकट के समय महावीर मन्दिर जनहित के कार्यों के लिए हमेशा कटिबद्ध है।

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

'धर्मायण' पत्रिका के गौरवशाली 4 विशेषांक
(विक्रम संवत् 2078)

चैत्र, रामनवमी

वैशाख, शक्ति-विमर्श

ज्येष्ठ, जल-विमर्श

आषाढ, भगवान् जगन्नाथ

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा नि:शुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित